❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ३ | गौराब्द ४७१, मास—गोविन्द ८, वार—अनिरुद्ध
बुधवार, २९ माघ, सम्वत् २०१४, १२ फरवरी १९५८ | संख्या ९

श्रीयुगलकिशोराष्टकम्

[श्रीमद्-रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

नवजलधरविद्युद्द्योतवर्णौ प्रसन्नौ वदननयनपद्मौ चारुचन्द्रावतंसौ ।
अलकतिलकभालौ केशवेशप्रफुल्लौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥१॥

वसनहरितनीलौ चन्दनालेपनाङ्गौ मणिमरकतदोसौ स्वर्णमालाप्रयुक्तौ ।
कनकवलयहस्तौ रासनाट्यप्रसक्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥२॥

अति मधुरसुवेशौ रङ्गभङ्गीत्रिभङ्गौ मधुरमृदुलहास्यौ कुण्डलाकीर्णकर्णौ ।
नटवररम्यौ नृत्यगीतानुरक्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥३॥

विविधगुणविदग्धौ वन्दनीयौ सुवेशौ मणिमयमकराद्यैः शोभिताङ्गौ स्फुरन्तौ ।
स्मितनमितकटाक्षौ धर्मकर्मप्रदक्षौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥४॥

कनकमुकुटचूडौ पुष्पितोद्भूषिताङ्गौ सकलवननिविष्टौ सुन्दरानन्दपुञ्जौ ।
चरणकमलदिव्यौ देवदेवादिसेव्यौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥५॥

अतिसुवलितगात्रौ गन्धमाल्यैर्विराजौ कतिकतिरमणीनां सेव्यमानौ सुवेशौ ।
मुनिसुरगणभाव्यौ वेदशास्त्रादिविज्ञौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥६॥

अतिसुमधुरमूर्ती दुष्टदर्पप्रशान्तौ सुरवरवरदौ द्वौ सर्वसिद्धिप्रदानौ ।
अतिरसवशमग्नौ गीतवाद्यप्रतानौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥७॥

अगमनिगम सारौ सृष्टिसंहारकारौ वयसि नवकिशोरौ नित्यवृन्दावनस्थौ ।
शमनभयविनाशौ पापिनस्तारयन्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥८॥

इदं मनोहरं स्तोत्रं श्रद्धया यः पठेन्नरः ।
राधिकाकृष्णचन्द्रौ च सिद्धिदौ नात्र संशयः ॥९॥

अनुवाद :—

जिनका वर्ण क्रमशः नवीन जलपूर्ण मेघ एवं विद्युच्छटाके समान है, जिनके मुखपर सदा प्रसन्नता छायी रहती है, जिनके मुख और नेत्र कमलके समान प्रफुल्लित हैं, जिनके मस्तकपर क्रमशः मयूरपिच्छका मुकुट एवं स्वर्णमय चन्द्रिका सुशोभित है, जिनके ललाटपर सुन्दर तिलक किया हुआ है और अलकावली बिथुरी हुई हैं और जो अद्भुत केश रचनाके कारण फूले-फूलेसे लगते हैं, अरे मेरे मन ! तू उन श्रीराधिका और श्रीकृष्णचन्द्रका ही निरन्तर भजन कर ॥१॥

जिनके श्रीअङ्गोंपर क्रमशः पीले और नीले वस्त्र सुशोभित हैं, जिनके श्रीविग्रह चन्दनसे चर्चित हो रहे हैं, जिनकी अङ्गकान्ति क्रमशः मरकतमणि एवं स्वर्णके सदृश हैं, जिनके वक्षःस्थलपर स्वर्णहार सुशोभित हैं, हाथोंमें सोनेके कंगन चमक रहे है और जो रास-क्रीडामें संलग्न हैं, अरे मन ! उन श्रीवृषभानुकिशोरी एवं श्याम सुन्दर श्रीकृष्णका ही नित्य सेवन किया कर ॥२॥

जिन्होंने अत्यन्त मधुर एवं सुन्दर वेश बना रखा है, जो अत्यन्त मधुर भङ्गीसे त्रिभङ्गी होकर स्थित हैं, जो मधुर एवं मृदुल हँसी हँस रहे हैं, जिनके कानोंमें कुण्डल एवं कर्णफूल सुशोभितहैं जो श्रेष्ठ नट एवं नटीके रूपमें सुसज्जित हैं तथा नृत्य एवं गीतके परम अनुरागी हैं, अरे मन ! उन राधिका और कृष्णचन्द्रका ही तू निरन्तर भजन किया कर ॥३॥

जो विविधगुणोंसे विभूषित हैं और सदा वन्दनके योग्य हैं; जिन्होंने अत्यन्त मनोहर वेश धारण कर रखा है, जिनके श्रीअंगोंमें मणिमय मकराकृत कुण्डल आदि आभूषण सुशोभित हैं, जिनके अंगोंसे प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं, जिनके नेत्र-प्रान्तोंमें मधुर हँसी खेलती रहती है और जो हमारे धर्मकर्मके फल-स्वरूप हमें प्राप्त हुए हैं, अरे मन ! उन वृषभानुकिशोरी एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णमें ही सदा लवलीन रह ॥४॥

जो मस्तकपर स्वर्णका मुकुट एवं सोनेकी चन्द्रिका धारण किये हुए हैं, जिनके अंग-प्रत्यङ्ग फूलोंके शृङ्गार एवं विविध आभूषणोंसे विभूषित हैं, जो व्रजभूमिके समस्त वन-प्रान्तोंमें प्रवेश करके नानाप्रकारकी लीलाएँ रचते रहते हैं, जो सौन्दर्य एवं आनन्दके मूर्त्त रूप हैं, जिनके चरणकमल अत्यन्त दिव्य हैं और जो देवदेव महादेव आदिके भी आराध्य हैं, अरे मन ! उन श्रीराधाकृष्णका ही तू निरन्तर चिन्तन किया कर ॥५॥

जिनके अंगोंका संचालन अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है, जो नाना-प्रकारके सुगन्धित-द्रव्योंका लेप किये हुए और नानाप्रकारके पुष्पोंकी मालाओंसे सुसज्जित हैं और असंख्य व्रज-सुन्दरियाँ जिनकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं, जिनका वेश अत्यन्त मनोमोहक है, बड़े-बड़े देवता, मुनिगण भी जिनका ध्यानमें ही दर्शन

कर पाते हैं और जो वेद-शास्त्रादिके महान पण्डित हैं, अरे मन ! तू उन श्रीराधिका और श्रीकृष्णचन्द्रका ही निरन्तर भजन किया कर ॥६॥

जिनका श्रीविग्रह अत्यन्त मधुर है, जो दुष्टजनोंके दर्पको चूर्ण करनेमें परम दक्ष हैं, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी वर देनेकी सामर्थ्य रखते हैं, और सब प्रकारकी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हैं, जो सदा ही परमोत्कृष्ट प्रेमके वशीभूत होकर आनन्दमें मग्न रहते हैं तथा गीत-वाद्यका विस्तार किया करते हैं, अरे मन ! उन्हीं दोनों राधाकृष्णकी तू भावना किया कर ॥७॥

जो अगम्य वेदोंके सारभूत हैं, सृष्टि और संहार जिनकी लीला मात्र हैं, जो सदा नवीन किशोरावस्थामें प्रकट रहते हैं, वृन्दावनमें ही जिनका नित्य निवास है, यमराजके भयका नाश करनेवाले और पापियोंको भी भवसागरसे तार देनेवाले हैं, अरे मन ! तू उन राधिकाकृष्णचन्द्रको ही भजता रह ॥८॥

इस मनोहर स्तोत्रका जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, उसके मनोरथको श्रीराधाकृष्ण निस्सन्देह पूर्ण करेंगे ॥९॥

हरिनाम महामंत्र

नाम—वस्तुका प्रारंभिक परिचय है। जड़ वस्तुओंके नाम, रूप, गुण और क्रियामें परस्पर भेद होता है। उनके नाम, रूप, गुण और क्रिया के बीच बीचमें मायाके विद्यमान रहनेसे उनके परस्पर भेदको हम-लोग लक्ष्य कर सकते हैं। द्वैतज्ञानमें एक ही वस्तुके भिन्न-भिन्न परिचयोंको अर्थात वस्तुके नाम और रूपको नाम और गुणको अलग-अलग मापा जा सकता है। किन्तु प्रकृतिसे अतीत अद्वयज्ञान-स्वरूप पूर्ण चिन्मय वस्तुके नाम, रूप, गुण और लीलामें मायिक व्यवधान न होनेके कारण उनमें परस्पर भेद नहीं होता। भगवान्-अप्राकृत-वस्तु हैं। वे प्रकृति द्वारा सृष्ट वस्तुओंमें से नहीं हैं; बल्कि प्रकृति स्वयं उन भगवान्से ही उत्पन्न हुई है। अतः नाम-भगवान् और नामी-भगवान्में कोई भेद नहीं है। अप्राकृत हरिनाम और प्राकृत मायिक वस्तुओंके नाम एक नहीं।

मंत्र किसे कहते हैं ?

जो मनकी रक्षा करता है, उसे मंत्र कहते हैं। मन अपनेको विषयोंका भोक्ता अभिमान कर इन्द्रियोंकी सहायतासे बाह्य-जगत्का भोग करता है। यही जीवोंके संसार-बंधनका कारण है। जो अनुष्ठान मनको बाह्यविषयोंसे रोक कर उसकी रक्षा करता है, उसे 'मंत्र' कहते हैं। बाह्य विषयोंसे हटाकर मनको अंतःस्थित वस्तुकी ओर लगा देनेसे उसे अब बाह्य विषयोंको भोग करनेका अवकाश नहीं मिलता। इन्द्रियोंके बाह्य जगत्में विचरण करते रहने पर ही मनके द्वारा विषय-भोगकी क्रिया होती है। किन्तु जब वे संयत होकर अंतःवस्तुके प्रति आकर्षित होती हैं, तब मन भी संयत होकर अंतःवस्तुका आनुगत्य स्वीकार करता है। मनको संयत करना ही साधनका तात्पर्य है। मंत्र ही वह साधन है। बाह्य विषयोंमें आसक्त असिद्ध मनका निग्रह करना ही मंत्रकी सफलता है। अंतःवस्तुका बहुत्व ऐकान्तिकताका विरोधी है। अनेक सेव्य-वस्तुओंका सेवक होना मंत्रसिद्धिमें बाधक है।

असिद्ध जीव अपने मनको संयत करनेके लिये मंत्र ग्रहण करता है। मंत्र-साधनमें तत्पर जीव 'साधक' कहलाता है। जिस समय साधक जीव अनर्थयुक्त

भावोंसे क्षुब्ध हो उठता है, उस समय वह उन अनर्थोंसे मुक्त होने के लिये मंत्र ग्रहण करता है। उन्नत अवस्थामें अनर्थ-निवृत्ति होनेपर मुक्त मन 'हरिनाम' ग्रहणके योग्य होता है। अनर्थ-मुक्त जीव ही हरिनाम ग्रहण कर सकता है।

नाम और मंत्रमें भेद

विषय-वासनाओंसे रहित, संसारसे मुक्त जीव-समूह श्रीरूपके आनुगत्यमें हरिनाम ग्रहणकर हरिनामकी उपासना करनेमें समर्थ होता है। 'नाम'—सम्बोधन पदका होता है और मंत्र—नामके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति युक्तकर पहले प्रणव 'ॐ' और पीछे 'नमः', 'स्वाहा' आदि जोड़कर बना होता है। मंत्रका उद्देश्य अनर्थोंको दूर कर सम्बन्ध-ज्ञान (भगवान्‌के साथ सम्बन्ध) पैदा कराना होता है। सम्बोधनकारी (नाम-उच्चारणकारी) सम्बन्ध-ज्ञानसे युक्त होता है और सम्प्रदान-कारी (मंत्रउच्चारण करनेवाला) जड़ अभिमानसे मुक्त होकर सम्बन्ध-ज्ञानको प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है।

जपनीय मन्त्रसे कीर्तनीय नामकी श्रेष्ठता

नाम और मंत्रमें भेद होता है। नाममें केवल मात्र सम्बोधनके अतिरिक्त कोई दूसरी विभक्ति नहीं लगती। मंत्रमें चतुर्थी विभक्ति लगती है। नाम ग्रहण करनेवाला सम्बन्ध-ज्ञानसे युक्त होता है तथा उसका उद्देश्य कृष्ण-प्रेमको प्राप्त करना होता है। मंत्रका उद्देश्य साधकको विषयासक्ति और प्राकृत अहङ्कार आदिसे मुक्त करा कर नामके चरणोंमें आत्मसमर्पण करा देना होता है। सम्बन्ध-ज्ञान प्राप्त हुए पुरुषोंके लिये सम्बोधन ही बहुत होता है। जिस समय जीव पहले-पहल साधन राज्यमें प्रवेश करता है, उस समय उसके लिये मन्त्र-जप प्रधान अनुष्ठान होता है।

जप दो प्रकारका होता है—मानस जप और उपांशु-जप। बिना उच्चारण किये मन-ही-मन जो जप होता है, उसे 'मानस जप' कहते हैं। और हलके उच्चारणके साथ जो जप किया जाता है, उसे उपांशु-जप कहते हैं। उच्चरित शब्द दूसरेके द्वारा सुन लिये जाने पर जपकारीका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। इसलिये शास्त्रोंमें उपांशु जपसे मानस जपकी श्रेष्ठता बतलाई गयी है। जपके द्वारा केवल उस जप करनेवालेका ही स्वार्थ सिद्ध होता है। उससे दूसरोंका कोई उपकार नहीं होता। इसलिये जपकी दृष्टिसे उपांशु जपकी अपेक्षा मानस जप मंत्र-सिद्धिके लिये अधिक उपयोगी होने पर भी कीर्त्तन जीव-दयाका सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। कीर्त्तन द्वारा अपना तो कल्याण होता ही है, कीर्त्तनको सुननेवाले जीवोंका भी परम कल्याण होता है। यदि कीर्त्तन नहीं होता, तो जापक-सम्प्रदाय अर्थात् जप करनेवाले जप करनेकी प्रेरणा कहाँ से पाते? फलतः जप करनेवालोंका सर्वथा अभाव ही होता। गुरु शिष्यको सर्वप्रथम कीर्त्तनके द्वारा (मंत्र को उच्चारण करके) ही मन्त्र देता है। वही कीर्त्तन किया हुआ अर्थात् उच्चारण किया हुआ मंत्र, शिष्यके लिये जपका विषय होता है। इसीलिये शास्त्रोंमें जपसे बढ़ कर कीर्त्तनकी श्रेष्ठता बतलायी गयी है। नीचे इसके कुछ प्रमाण दिये जा रहे हैं—

श्रीचैतन्य भागवतमें—

जपकर्त्ता हैते उच्च संकीर्त्तनकारी।
शतगुन अधिक पुराणे केने धरि॥
सुन विप्र मन दिया इहार कारण।
जपि आपनारे सबे करये पोषण॥
उच्चकरि करिले गोविन्द संकीर्त्तन।
जन्तुमात्र सुनियाई पाय विमोचन॥
केह आपनारे मात्र करये पोषण।
केह वा पोषण करे सहस्त्रेक जन॥
दुईते के बड़, भाबि बुझह आपने।
एई अभिप्राय गुण उच्चसंकीर्त्तने॥

(चै० भा० आ० १६।२८४-२६०)

भावार्थ यह कि जप द्वारा केवल जप करनेवाले की ही स्वार्थसिद्धि होती है, परन्तु उच्च नाम-संकीर्त्तन द्वारा अपना तो कल्याण होता ही है, साथ ही साथ सहस्र-सहस्र स्थावर और जंगम सब प्रकारके प्राणियोंका भी कल्याण हो जाता है, जो उस उच्च

संकीर्त्तनको श्रवण करते हैं। एक आदमी स्वयं अपना भरण पोषण करता है और दूसरा कोई हजार-हजार व्यक्तियोंका भरण-पोषण करता है। अब पाठक ही विचार करें कि दोनोंमें कौन व्यक्ति श्रेष्ठ है? यही सम्बन्ध जपकारी और कीर्त्तनकारी में है। जप अपने लिये होता है और कीर्त्तनसे लाखों प्राणियों का कल्याण होता है।

नारदीय पुराणमें ब्रह्मा महाराजकी उक्ति—

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतॄन् पुनाति च॥

अर्थात् हरिनाम जप करनेवालेकी अपेक्षा जोर-जोरसे हरिनाम कीर्त्तन करनेवाला एक सौ गुण श्रेष्ठ है। क्योंकि जपकारी केवल अपनेको ही पवित्र करता है, किन्तु जोर-जोरसे उच्चारणकारी अपनेको तो पवित्र करता ही है, साथ ही सुननेवालोंको भी पवित्र कर देता है।

श्रीरूप गोस्वामी कीर्त्तनकी संज्ञा निरूपण करते हुए लिखते हैं—

नामरूपगुणादीनां उच्चैर्भाषा तु कीर्त्तनम्।
मंत्रस्य सुखदुच्चारो जप इत्यभिधीयते॥

भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाका जोर-जोरसे उच्चारण करनेको कीर्त्तन कहते हैं तथा अत्यन्त धीरे-धीरे मंत्रोंके उच्चारणको जप कहते हैं।

श्रीचैतन्यदेवका उपदेश—

प्रभु बले कृष्णभक्ति दृढ़क संसार।
कृष्ण गुण 'नाम' वई ना बलिह आर॥
आपने सबारे प्रभु करे उपदेश।
कृष्णनाम महामंत्र सुनह विशेष॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
प्रभु कहे कहिलाम एइ महामंत्र।
इहा गिया जप सबे करिया निर्बन्ध॥
इहा हैते सर्वसिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण 'बल' इथे विधि नाहि आर॥
दशे पाँचे मिलि निज दुआरे बसिया।
कीर्त्तन करिह सबे 'हाते तालि' दिया॥
हरे हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

(श्रीचैतन्य भागवत)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुजी भी सबको यही उपदेश देते हैं कि—तुम लोग निरन्तर कृष्ण नाम आदिका कीर्त्तन और श्रवण करो। इसके अतिरिक्त न कोई दूसरी बात बोलो न सुनो। विशेषतः कलि-कालमें कृष्णनाम महामंत्रका ही श्रवण और कीर्त्तन करना चाहिये। यदि पूछो महामन्त्र किसे कहते हैं, तो सुनो—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

यही कलियुगका महामन्त्र है। श्रद्धापूर्वक नियमानुसार संख्या रखकर इस महामन्त्रका जप करना। इससे सब लोगोंकी समस्त कामनाएँ, सिद्धियाँ सिद्ध होंगी। इसमें और कोई विधि नहीं है। सब समय हरिनाम करो। दस-पाँच व्यक्ति एक साथ मिल कर अपने अपने घरों पर हाथकी ताली बजा-बजा कर उसका कीर्त्तन करो।'

इस महामन्त्रका मानस जप हो सकता है, उपांशु जप किया जा सकता है तथा जोर-जोरसे कीर्त्तन भी किया जा सकता है। श्रीजीव गोस्वामी उच्च-संकीर्त्तनके सम्बन्धमें क्रम-संदर्भमें (७।५) लिखते हैं—'नाम-कीर्त्तनञ्चेदमुच्चैरेव प्रशस्तम्। अत्र यथोपदिष्टं कलियुगपावनावतारेण श्रीभगवता। अतएव यद्यन्या भक्तिः कलौ कर्त्तव्या तदा कीर्त्तनाख्याभक्ति संयोगेनैव।' तात्पर्य यह कि 'नाम' का जोर-जोरसे कीर्त्तन करना ही प्रसस्त (उत्तम) है। साधन भक्तिके ६४ प्रकारके अंग होते हैं। इस ६४ प्रकारकी साधन भक्तिके किसी एक अंगका साधन किया जाय अथवा अनेक अंगोंका ही साधन क्यों न किया जाय, उसके साथ 'नाम-संकीर्त्तन' का होना अनिवार्य है। अन्यथा वे साधन फलदायक नहीं होते। जप उन ६४

प्रकारके साधन-अंगोंमें से एक है। अतः जपका साधन भी नाम संकीर्त्तनके योगसे ही करना उचित है। इसी रहस्यको स्पष्ट करनेके लिये ऊपर में 'सर्वक्षण बोलो' शब्दोंका प्रयोग किया गया है। इसीलिये जप मानस हो अथवा उपांशु, कीर्त्तनाख्या भक्ति के संयोगसे ही करणीय है—यही श्रीचैतन्यदेवका अभिमत है।

'बोलो' और 'सर्वक्षण बोलो' वचनों द्वारा इस बातकी ओर इंगित किया गया है कि नाम कैसे करना चाहिए ? अर्थात् केवल मन-ही-मन नहीं बल्कि उच्चारणपूर्वक करना चाहिए। पुनः 'कीर्त्तन करिह सबे हाते तालि दिया' द्वारा महामंत्रका उच्च संकीर्तन करनेका उपदेश दिया गया है। 'सबे हाते तालि दिया' द्वारा घर पर बहुतसे लोग एकत्रित होकर कीर्तन करनेका आदेश दिया गया है। इन वचनोंसे उच्च कीर्त्तनका स्पष्ट निर्देश पाया जाता है तथा इनके द्वारा इस बातका भी खण्डन हो जाता है कि हरिनाम महामंत्र दूसरे-दूसरे मन्त्रोंकी तरह केवल जप्य है, कीर्त्तनीय नहीं।

श्रीनाम-कीर्त्तन विरोधी आधुनिक मतोंका खण्डन

आजकल कुछ नये-नये भारवाही (जो सार-ग्राही नहीं हैं) सम्प्रदायके व्यक्ति महामंत्रको केवल जप्य बतलाते हैं। परन्तु उनका यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। इसीलिये सिद्धान्त-ज्ञान-रहित व्यक्तियोंने महामंत्रके बदले छड़ा-गानों (मनः-कल्पित शास्त्र और सिद्धान्तके विरुद्ध मंत्रों) का कीर्त्तन प्रचार करना आरंभ किया है, जो श्रीमन्महाप्रभुके मतके सर्वथा विरुद्ध है। अनर्थयुक्त जीव मंत्रोंकी रचना करनेका अधिकारी नहीं है। श्रीगुरुदेवके मुखसे मंत्र ग्रहण करना ही उसका परम कर्त्तव्य है। विषयासक्त जीव गुरुके आसन पर बैठकर कनक, कामिनी और प्रतिष्ठाके लोभसे नये-नये नाम-मंत्रोंकी रचना करते हैं तथा श्रीगौराङ्गमहाप्रभुके उपदेशोंका निरादर करते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे-ऐसे व्यक्तियोंके मतोंका आदर नहीं करेंगे। ओष्ठस्पन्दनमात्रेण कीर्तनन्तु ततो वरम्।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

संगत्याग

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ८, पृष्ठ १७८ से आगे]

संस्कारसे उत्पन्न असक्ति

गीतामें कर्म-सङ्गीके सम्बन्धमें कहा गया है:—

न बुद्धि-भेदं जनयेदज्ञानां कर्म-सङ्गिनां।
योषयेत् सर्व-कर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥
(गीता ३।२६)

पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्म और ज्ञानादिके संस्कारोंके अनुरूप वर्त्तमान जन्ममें कर्म-संग या ज्ञान-संग होता है। संस्कार-संग अत्यन्त प्रबल और अपरिहार्य होता है। इससे पीछा छुड़ाना कठिन ही नहीं, असंभव सा होता है। यहाँ तक कि आत्म-हत्या तक करने पर भी पूर्व-संस्कारोंको त्यागा नहीं जा सकता है। संस्कार दो प्रकार के होते हैं। पूर्व-संस्कार और आधुनिक संस्कार। पिछले जन्मोंके कर्म आदिसे जिस संस्कारका गठन होता है, वह 'पूर्व-संस्कार' कहलाता है। वर्त्तमान जन्मके कर्म और संगसे जो संस्कार गठित होता है, उसे 'आधुनिक-संस्कार' कहते हैं। जगत्के सम्पूर्ण प्राणी इन्हीं दो संस्कारोंके अधीन होकर कर्मचक्रमें भ्रमण कर रहे हैं। जीव, जिस समय मायाके बंधनमें नहीं होता है, उस समय उसका स्वभाव निर्मल कृष्णदास्य होता है। किन्तु

मायाजालमें बँधे हुये जीवका वह शुद्ध-स्वरूप आच्छादित हो जाता है। इस समय जीव पूर्व और आधुनिक संस्कारोंको छोड़नेमें असमर्थ होता है। वर्त्तमान जन्ममें पूर्व-संस्कार मनुष्यके द्वितीय संस्कारके रूपमें प्रकाशित होता है।

संस्कारासक्तिको दूर करनेका उपाय—साधुसंग

इस अपरिहार्य संस्कारासक्तिको केवल साधु-संग से ही शोधन किया जा सकता है। साधु-संग ही इस महारोगकी एक मात्र औषध है। जब तक संस्कार-संग शुद्ध नहीं होता, भक्तिकी सिद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती है।

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्याय कल्पते॥
(श्रीमद्भा० ३।२३।५५)

असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ संग संसार-बन्धन का कारण होता है, वह संग चाहे ज्ञानवश हो अथवा अज्ञान वश ही क्यों न हो। वही संग सत्पुरुषोंके साथ किये जाने पर असंगता प्रदान करता है। और भी कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञच्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथाऽवरुन्धे सत्संगः सर्व-सङ्गापहो हि माम्॥
(श्रीमद्भा० ११।१२।१-२)

संस्कार-संग अतिशय दुष्ट होता है। उसे नष्ट करनेमें एकमात्र सत्संग ही समर्थ है। यही कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे (श्रीकृष्णको) वशमें कर लेता है वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न धर्म-पालन, न स्वाध्याय, न तपस्या, न त्याग, न इष्टा-पूर्त्ति और न दक्षिणा। कहाँ तक कहूँ, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्संगके समान मुझे वश करनेमें समर्थ नहीं हैं। क्योंकि इनका बहुत दिनों तक साधन करने पर भी संग-दोष नष्ट नहीं होता है।

कुसंस्कार का फल

कुसंस्कारसे ही जीवोंमें राजसी और तामसी प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं। खान, पान, शयन और भिन्न-भिन्न क्रियाओंके सम्बन्धमें मनुष्यकी जो सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं, संस्कार ही उनका मूल कारण है। कुसंस्कारके ही फल स्वरूप कर्मियों और ज्ञानियोंमें वैष्णवोंके प्रति अवज्ञाका भाव पैदा होता है। जब तक यह कुसंस्कार नष्ट नहीं हो जाता, तबतक दस-नामापराध सम्पूर्ण रूपसे दूर नहीं होते। कर्माभिमान और ज्ञानाभिमानसे ही सन्तोंके चरणोंमें अपराध होता है। कुसंस्कारके कारण ही साधुनिन्दारूप नामापराध अभक्तजनोंके हृदयमें अपना घर बना लेता है। कुसंस्कारके कारण ही जीव कृष्णके चरणों में अनन्य भावसे शरण नहीं ले पाता, बल्कि वह अन्य-अन्य देवताओंको स्वतन्त्र ईश्वर मानकर कभी एक देवताकी; कभी अन्य देवताकी शरण लेता फिरता है। कुसंस्कारके कारण ही जीव गुरुकी अवज्ञा करता है, शास्त्रोंकी निंदा करता है, नामके फलको अतिशयोक्ति मानता है, भगवन्नामको दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंके समान मानता है, नामके बलपर पाप करता है, देह तथा स्त्री-पुत्र-परिवार-धनको 'मैं' और 'मेरा' मानता है, अनाधिकारी व्यक्तियोंको हरि-नाम देता है—इत्यादि दस अपराधोंमें मत्त रहता है। ऐसी दशामें जीवका कल्याण कैसे हो सकता है? इसलिए कहते हैं—

असद्भिः सह सङ्गस्तु न कर्त्तव्यः कदाचन।
यस्मात् सर्वार्थ हानिः स्यादधः पातश्च जायते॥

तात्पर्य यह कि असत्पुरुषोंका संग कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे अर्थ-धर्म-काम और मोक्ष एवं भक्ति आदि समस्त प्रकारके अर्थ नष्ट हो जाते हैं। सत्संगमें ही कुसङ्गका दोष धोया जा सकता है तथा उसीसे समस्त प्रकारके अर्थोंकी प्राप्ति हो सकती है।

विशुद्ध वैष्णव-संगका प्रभाव

कुछ दिनों तक निरन्तर शुद्ध वैष्णवोंका सङ्ग करनेसे भाग्यवान पुरुषोंकी संस्कार-आसक्ति नष्ट हो जाती है—ऐसा देखा गया है। देवर्षि नारदके सङ्ग-प्रभावसे व्याध और रत्नाकर दस्यु (वाल्मीकि ऋषि) के कल्याण होनेकी बात कौन नहीं जानता? श्रीरामानुजाचार्यका यह उपदेश सब समय स्मरण रखने के योग्य है कि—यदि तुम अपनी हजार चेष्टाओं के द्वारा अपनेको सुधारनेमें असमर्थ हो रहे हो, तो वैष्णव साधुओंके पास बैठा करो, तुम्हारे सब पाप धुल जायेंगे, शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण हो जायगा।' साधु-ससंगमें रहते रहते कुछ ही दिनोंमें मन फिर जाता है, विषयासक्ति नष्ट हो जाती है, हृदयमें भक्ति का अंकुर पैदा हो जाता है। धीरे २ वैष्णवोंके आचार-व्यवहारके प्रति रुचि पैदा हो जाती है। बहुतोंको स्त्री संगकी कामनाको, अर्थ-पिपासाको, भोग और मोक्षकी वासनाको, ज्ञान और कर्मके प्रति आदरकी भावनाको, मद्य-मांस और मैथुनकी स्पृहाको धूमपान और ताम्बूल (पान) सेवनकी आदतको—साधुसंगके प्रभावसे छोड़कर सदाचार अवलम्बन करते—शुद्धि भक्तिका आचरण करते देखा गया है। वैष्णवोंके अव्यर्थकालत्वधर्म (निरन्तर कृष्ण सेवामें व्यस्तता-रूप धर्म) से प्रभावित होकर बहुतोंको आलसता, परचर्चा, परनिंदा आदि अनर्थोंसे मुक्त होते देखा गया है।

हमने ऐसा देखा है कि वैष्णवोंके संसर्गसे बहुतों की दुष्टता और बहुतोंकी प्रतिष्ठाकी कामना दूर हो जाती है। यदि वही संग कुछ श्रद्धाके साथ किया जाय तो आश्चर्यजनक फल होता है। लोगोंके स्वभाव सम्पूर्ण रूपसे परिवर्तन हो जाते हैं, संसार-आसक्ति दूर हो जाती है, युद्ध में जय-प्राप्तिकी लालसा दूर हो जाती है। कहाँ तक गिनाया जाय, सत्संगके प्रभावसे राजा राज्यका लोभ छोड़कर, भोगी भोगकी वासना त्याग कर, धनी धनकी लोलुपता त्याग कर, कामी कामिनीका परित्याग कर, राजनीतिज्ञ राजनीति को तिलाञ्जलि देकर, ग्राम्यकवि ग्राम्य-कवितादिका व्यसन छोड़कर, तार्किक जगत्को अपने तर्कसे पराजित करनेके स्वप्नसे उठकर, अपने भौतिक या आणुविक विज्ञानके चमत्कारसे विश्वको विनाशकी ओर पर लानेवाला जड़ वैज्ञानिक अपनी वैज्ञानिक गवेषणाको लात मार भगवानका अनन्य भक्त हो जाता है। वैष्णव-संगके बिना संस्कार-आसक्तिको दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं दीख पड़ता।

द्रव्यसक्ति सबके लिये त्याज्य है।

द्रव्योंके प्रति होनेवाली समस्त प्रकारकी आसक्तियोंको दूर करनेका विशेष रूपसे प्रयत्न करना चाहिये। घर-बार, स्त्री पुत्र, सुन्दर-सुन्दर आभूषण और वस्त्र, शरीर, भोजन, वृक्ष, पशु, पक्षी, तथा अपने व्यवहार की वस्तु आदि के प्रति गृही लोगोंकी निसर्गसे ही आसक्ति होती है। कुछ लोगोंको धूम्रपानमें, बहुतोंको मद्य-मांस आदि भोजनमें तथा दूसरोंको मादक द्रव्यों के सेवनमें इतनी अधिक आसक्ति होती है कि वे बुरी आदतें परमार्थ-साधनमें बड़ी बाधक सिद्ध होती हैं। कुछ लोग मद्य-मांस आदिके सामने भगवत्प्रसादका भी निरादर करनेमें आगा-पीछा नहीं करते। बार-बार धूम्रपानकी आदत भक्ति ग्रन्थोंके पाठका, उनके श्रवण और कीर्त्तनका अधिक देर तक रसास्वादन में बाधक होती है। ऐसी आदतसे लाचार व्यक्ति मन्दिरमें अधिक देर तक नहीं ठहर पाते, सत्संगका सुख अधिक समय तक नहीं पा सकते। जबतक इन द्रव्यासक्तियोंको सम्पूर्ण रूपसे दूर नहीं किया जाता, तबतक भजन-सुखका अनुभव नहीं हो सकता है। सत्संग द्वारा ये सब आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं; फिर भी साधन-भक्तिकी क्रियाओंके द्वारा इन छोटी-मोटी आसक्तियोंको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। भगवद्भक्ति सम्बन्धी व्रतोंके पालनसे ये आसक्तियाँ दूर हो सकती हैं।

एकादशी आदि व्रतोंके पालनसे आसक्तिका दूर होना।

एकादशी, जन्माष्टमी, गौरपूर्णिमा, रामनवमी, नृसिंहचतुर्दशी आदि व्रतोंका श्रद्धाके साथ नियम-

पूर्वक पालन करनेसे ये आशक्तियाँ सहज ही दूर हो जाती हैं। व्रत और नियमोंका एक उद्देश्य आसक्तियों को दूर करना भी है। व्रतोंके दिन सब प्रकारके भोगों का वर्जन करके एकान्त मनसे भगवानका भजन करना ही एकमात्र विधि है।

भोग-द्रव्य दो प्रकारके होते है—प्राण-रक्षक द्रव्य और इन्द्रिय-सुखकर द्रव्य। अन्न-जल आदि द्रव्य प्राण-रक्षक है तथा मद्य, मांस, पान, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि इन्द्रिय-सुखकर-द्रव्य हैं। व्रतोंके दिन इन्द्रिय सुखकर-द्रव्योंका सम्पूर्णरूपसे त्याग करना आवश्यक है। अन्यथा व्रतपालन नहीं होता। प्राण-रक्षक द्रव्योंका भी जितना तक हो सके संकोच करना चाहिए। शारीरिक अवस्थाके अनुसार कमसे कम जितना हो सके अनुकल्प स्वीकार करनेकी व्यवस्था है। परन्तु इन्द्रिय-सुखकर द्रव्योंके अनुकल्प की विधि नहीं है — उनका सम्पूर्णरूपसे त्याग करना ही विधि है।

भोग प्रवृत्तिको क्रमशः संकोच करना—व्रत पालन के उद्देश्योंमें से एक उद्देश्य है। यदि कोई ऐसा सोचे कि आज व्रतके दिन किसी प्रकारसे कष्ट सहकर अमुक वस्तुका व्यवहार नहीं करूँगा, कल इसे खूब मन भर-के भोग करूँगा—तो व्रतका उद्देश्य सफल नहीं होता। क्योंकि क्रमशः—अभ्यासके द्वारा उन द्रव्योंका संग त्याग करनेके लिये ही व्रत पालनकी व्यवस्था दी गयी है। साधारणतः व्रत तीन दिन व्यापी होता है। इस प्रकार तीन दिनों तक विषयोंका संग वर्जन करते-करते मास व्यापी चांद्रायण और चारमास व्यापी चातु-र्मास्य आदि व्रतोंके द्वारा क्रमशः उन द्रव्योंको सदाके लिये छोड़ देना होगा। जिन लोगोंको व्रत पालनके समय 'क्षिप्रंभवति धर्मात्मा'-गीताकी यह वाणी याद नहीं रहती उनका वैराग्य हाथीके स्नानकी तरह क्षणिक होता है।

योषित-संग और अभक्तोंके संग त्याज्य है:-

जो लोग शुद्ध भक्ति लाभ करना चाहते हैं, उनको अभक्तोंका संग तथा योषित (स्त्री) का संग सर्वथा वर्जनीय है। इसके लिये सत्संगकी नितांत आवश्यकता है। साथ ही द्रव्यासक्तको दूर करनेके लिये वैष्णव व्रतोंका पालन करना भी जरूरी है। इनमें लापरवाही करना उचित नहीं। यदि अश्रद्धापूर्वक इनका पालन किया भी जाय तो फल नहीं होता, बल्कि उत्तरोत्तर अहंकार और कपटताकी वृद्धि होती है और जन्म-जन्मान्तर तक श्रवण-कीर्तन होने पर भी उनके लिये हरिभक्ति दुर्लभ होती है।

संग और संग-त्याग किसे कहते हैं ?

संग और संग-त्यागके सम्बन्धमें बहुतसे लोगोंको अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न होते हैं। सन्देह होने की बात भी है; क्योंकि यदि असत् व्यक्तियों या वस्तुओंके निकट जानेको ही संग कहा जाय, तो ऐसे संगको दूर करनेका उपाय नहीं है। जब तक शरीर है, तबतक जीवन निर्वाहोपयोगी द्रव्यों या वस्तुओं का सङ्ग कैसे त्यागा जा सकता है? गृहस्थ वैष्णव परिवारके लोगोंको कैसे छोड़ सकते हैं? घर पर रहा जाय या वनमें रहा जाय, शरीर निर्वाहके लिये असत् लोगोंके पास अवश्य ही जाना पड़ेगा। इस लिये सङ्ग और सङ्गत्यागकी सीमानिर्द्धारित करते हुए रूप गोस्वामीने उपदेशामृतमें लिखा है।

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

हे साधकजन! शरीर-यात्रा निर्वाहके लिये सत् और असत् दोनों प्रकारके लोगोंके निकट अवश्य ही जाना पड़ेगा। इस विषयमें क्या गृही, क्या गृहत्यागी दोनों समान हैं। किन्तु एक उपाय है, निकटता भी होगी और सङ्ग करना भी नहीं होगा। परस्पर लेन-देन, परस्पर कथोपकथन और परस्पर भोजन आदि कार्य यदि प्रीतिपूर्वक किये जाँय, तभी सङ्ग होता है। भूखेको जो भोजन और गरीबोंको जो सहायता दी जाती है तथा धार्मिक दातासे जो ग्रहण किया जाता है, वह केवल कर्त्तव्य समझ कर दिया लिया जाता है—इन कार्योंमें प्रीतिके अभावके कारण दाता और ग्रहीताका परस्पर सङ्ग नहीं होता। परन्तु ये सब

कार्य प्रीतिपूर्वक होनेपर सङ्ग कहलाता है। अतः अवैष्णव अर्थात् बुरे लोगोंके साथ इन व्यवहारोंको प्रीतिपूर्वक करनेसे कुसङ्ग होता है और शुद्ध वैष्णवोंके साथ करनेसे सत्सङ्ग होता है।

मान लो, कोई असत् व्यक्ति तुम्हारे पास आया। अब तुम्हें चाहिये कि तुम उसके साथ जैसा आवश्यक हो कर्त्तव्य समझ कर व्यवहार करो; किन्तु गूढ़ बातचीत न करो। गूढ़ बातचीतसे साधारणतः प्रीति हो जाया करती है और प्रीति होते ही संग-दोष उपस्थित हो जाता है। यदि तुम्हारे निकटके बन्धु-बाँधवोंमेंसे कोई आ जाय, तो तुम उससे आवश्यक बातें कर सकते हो। किन्तु उसके साथ हृदयकी बातें प्रीति-पूर्वक नहीं कहनी ही उचित हैं। यदि तुम्हारा वही बन्धु वैष्णव हुआ तो वे ही बातें प्रीतिपूर्वक करनी चाहिये। ऐसा होनेसे बन्धु-बाँधवोंसे कोई विरोधकी भी संभावना न होगी। व्यवहारिक बातोंसे सङ्ग नहीं होता। बाजारमें कुछ खरीदने या बेचनेके समयसे किसी नये खरीददार या विक्रेतासे जैसे व्यवहार होता है, ठीक उसी प्रकारका व्यवहार साधकको साधारण लोगोंके साथ निर्लिप्त होकर करना उचित है। परन्तु शुद्ध भक्तोंके साथ वे ही व्यवहार प्रीतिपूर्वक होने उचित हैं।

भूखेको अथवा विद्या-व्यवसायियोंको भोजन कराते समय उनके साथ अतिथि जैसा व्यवहार करो, परन्तु विशेष प्रीति करनेकी आवश्यकता नहीं। यत्नमें कोई त्रुटि न हो, फिर भी उससे प्रीति न करो। केवल साधुसन्तोंको प्रीति-पूर्वक खिलाओ और उनके द्वारा दिये गये प्रसादको प्रीति-पूर्वक ग्रहण करो—खाओ। स्त्री पुत्र, दास-दासी और आगन्तुक तथा आने-जानेवाले लोगोंके साथ उपरोक्त प्रकारसे व्यवहार करनेसे असत्संगका दोष नहीं लगता, और सत्सङ्ग करना भी हो जाता है। इस प्रकार सोच-समझ कर कुसंगका परित्याग नहीं करनेसे कृष्ण-भक्ति प्राप्त होनेकी कोई आशा नहीं।

संग-त्यागके सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामीके उपदेश

गृहत्यागी वैष्णवोंको उचित है कि सद्गृहस्थोंके घरमें मधुकरी द्वारा जो कुछ पावें, विचार कर ग्रहण करें। उन्हें सब समय स्थूल और मधुकरी भिक्षाका अन्तर स्मरण रखना चाहिये। गृहस्थ वैष्णव सच्चरित्र गृहस्थोंके घरपर ही प्रसाद और अन्न ग्रहण करेंगे। अभक्त और दुराचार व्यक्तियोंके यहाँ सदा सावधानीसे प्रसाद-सेवा करेंगे। इस विषयमें अधिक उपदेशकी आवश्यकता नहीं है। सुकृतिसम्पन्न जीवको थोड़ी बातोंसे ही भक्तिके प्रति श्रद्धा हो जाती है। कृष्णकी कृपासे उनमें कुछ कुछ बुद्धियोगका उदय हो गया होता है। उसी बुद्धियोगके द्वारा वे आचार्योंके उपदेशोंका मर्म सहज ही समझ लेते हैं। अतः ऐसे लोगोंके लिये संक्षेपमें कुछ उपदेशोंकी आवश्यकता है। परन्तु सुकृति-हीन लोगोंमें श्रद्धाका अभाव होता है। ऐसे लोगोंको अधिक उपदेश देनेपर भी कुछ फल नहीं होता। इसीलिये रूप गोस्वामीने थोड़े ही शब्दोंमें साधकोंके लिये उपदेश दिये हैं।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीकेदार-बद्रीकी परिक्रमाका
विराट आयोजन चल रहा है

यात्रीगण तैयार हो जाँय। विस्तृत विवरणके लिये श्रीभागवत-पत्रिका कार्यालयको लिखें।

गीताकी वाणी

अठारहवाँ अध्याय

गीता शास्त्रके विभिन्न अध्यायोंमें भगवान्‌के मुखसे 'त्याग' और 'संन्यास'-शब्दोंको सुनकर भक्त-प्रवर अर्जुनने भगवान्‌से पूछा—'हृषिकेश ! मैं त्याग और संन्यासके तत्त्वको जानना चाहता हूँ ।'

अर्जुनके इस प्रश्नको सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! कितने ही पण्डितजन काम्यकर्मोंके त्यागको संन्यास बतलाते हैं तथा दूसरे सम्पूर्ण कर्मोंका फल त्यागनेको त्याग कहते हैं । कुछ लोग सम्पूर्ण कर्मोंको दोषयुक्त जानकर उन्हें स्वरूपतः त्यागनेका उपदेश देते हैं, तो कुछ लोग यज्ञ, दान आदि शुभकर्मोंको स्वरूपतः त्याग न कर उनके फलोंको त्यागनेके लिये बतलाते हैं । इन दोनों प्रकारके विचारोंमें परस्पर मतभेद है । परन्तु इस विषयमें मेरा स्थिर सिद्धान्त यह है कि यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंका स्वभावतः त्याग नहीं करना चाहिए । बद्धजीवोंको जीवनयात्रा-निर्वाह और अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये इन कर्मोंका आचरण अवश्य ही करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि समस्त कर्मोंको आसक्ति और फलकी कामनासे रहित होकर केवल अपना कर्त्तव्य समझ कर ही करना चाहिए । यज्ञ आदि नित्य-कर्मोंका स्वरूपतः त्याग करना उचित नहीं । त्याग तीन प्रकारके होते हैं—सात्विक त्याग, राजस त्याग और तामस त्याग । जो लोग मोहके कारण यज्ञ, दान, तप आदि नित्यकर्मोंका त्याग कर देते हैं, उनके त्यागको तामस त्याग कहते हैं । जो शास्त्रविहित नित्यकर्मोंको दुःखरूप समझ कर शारीरिक क्लेशके भयसे उन कर्त्तव्य कर्मोंका त्याग करते है, उनके त्यागको राजस त्याग कहते हैं और जो नित्यकर्मोंको स्वरूपतः न त्यागकर उनमें आसक्ति और फलका त्याग करते हैं, उनका त्याग सात्त्विक है । सात्त्विक त्यागी मनुष्य न तो दुःखजनक कर्मोंसे द्वेष करता है और न सुखजनक कर्मोंमें आसक्त ही होता है । ऐसा सात्त्विक त्यागी पुरुष कर्मके सम्बन्धमें संशय-रहित, बुद्धिमान और सच्चा त्यागी है । किसी भी शरीरधारी जीवके लिये सम्पूर्ण रूपसे सब कर्मोंका त्याग करना संभव नहीं है; इसलिये जो कर्मफलका त्याग करता है, वही त्यागी है । जो लोग कर्मफलका त्याग नहीं करते, उन्हें मरनेके पश्चात अच्छा, बुरा और मिश्र (अच्छा = स्वर्ग; बुरा = नरक; मिश्र = मनुष्य लोक)—तीन प्रकारका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । परन्तु कर्मफलका त्याग करनेवाले संन्यासियोंको वैसा फल भोगना नहीं पड़ता है ।

वेदान्त आदि शास्त्रोंमें कर्मोंकी सिद्धिके पाँच हेतु कहे गये हैं—अधिष्ठान (शरीर), कर्त्ता (चित्‌जड़-ग्रन्थि रूप अहंकार), ग्यारह इन्द्रियाँ, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ और दैव (जगद्‌व्यापार-नियामक ईश्वरकी प्रेरणा अथवा पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके संस्कार) ।

मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे जो कुछ भी बुरा या भला कर्म करता है, उसमें ये पाँचों कारण बनते हैं । इन पाँचों कारणोंके बिना कोई भी कर्म नहीं बनता है । परन्तु ऐसा होने पर भी जो मनुष्य केवल अपनेको ही कर्मका कर्त्ता मानता है, उसकी बुद्धि मलीन होती है; वह अज्ञानी कर्मका यथार्थ रहस्य नहीं समझता । जिस पुरुषके अन्तःकरणमें 'मैं कर्त्ता हूँ'—ऐसा भाव नहीं होता, वह समस्त लोकोंको मार कर भी किसीको मारता नहीं है । वह लोकोंको मारनेके कर्मफलसे बँधता नहीं है ।

ज्ञान, ज्ञेय (ज्ञानका विषय) और ज्ञाता (जाननेवाला)—इन तीनोंके संयोगसे कर्ममें प्रवृत्ति पैदा होती है तथा करण (जिससे कर्म किया जाय), कर्म और कर्त्ता (करनेवाला)—इन तीनोंके संयोगसे कर्म

होते हैं। मनुष्यके द्वारा किये गये समस्त कर्मोंकी दो प्रकारकी अवस्था होती है--प्रेरणा—जिससे कर्ममें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा मिलती है और संग्रह। कर्म किये जानेसे पूर्वकी अवस्थाको प्रेरणा कहते हैं। कर्म करनेके पहले उस विषय-सम्बन्धी ज्ञानकी आवश्यकता होती है। यही ज्ञाताका 'ज्ञेय' है। ज्ञाता मनुष्य--यह कर्म करने योग्य है या नहीं—ऐसा जानकर करण अर्थात् इन्द्रियों द्वारा उस कर्मको करनेके लिये 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा अभिमान करता है। अन्यथा कर्म बनता नहीं है। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और कर्त्ता भी गुणोंके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। जिस ज्ञानके द्वारा परस्पर भिन्न-भिन्न देव, मनुष्य, तिर्यगादि शरीरोंमें नाना प्रकारके फलोंको भोगनेके लिये वर्त्तमान एक ही जीवात्माको (अखण्ड और अव्यय रूपमें अर्थात् परस्पर भिन्न होने पर भी एक जातीय चेतन-वस्तु होनेके कारण एकरूप) देखा जाता है, वह सात्त्विक ज्ञान है। भिन्न-भिन्न शरीरोंमें भिन्न-भिन्न जातीय जीव हैं और उनका स्वरूप पृथक्-पृथक् है--ऐसे ज्ञानको राजस ज्ञान कहते हैं और जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा जीव नश्वर शरीरको ही सब कुछ मानता है, स्नान और भोजन आदि व्यापारोंको ही सर्वश्रेष्ठ कार्य मानकर उन्हीं कार्योंमें आसक्त रहता है तथा आत्मज्ञान से सर्वथा विमुख रहता है, वह ज्ञान तामस है। तामस ज्ञान युक्तिरहित, अतात्त्विक और तुच्छ होता है। तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञान ही--सात्त्विक ज्ञान है, नाना प्रकारके मतोंका प्रतिपादक-ज्ञान ही—राजस ज्ञान है तथा शरीर सम्बन्धी व्यवहारिक ज्ञान ही—तामस ज्ञान है।

ज्ञानका भेद बतलाकर अब कर्मका भेद बतला रहे हैं। कर्म भी सात्त्विक, राजस और तामस—तीन प्रकारका होता है। जो कर्म, फलकी कामनासे रहित पुरुषोंके द्वारा बिना राग-द्वेषके तथा कर्त्तापनके अभिमानसे रहित होकर किया जाय, वह सात्त्विक है। जो कर्म बहुत परिश्रम-साध्य और क्लेशपूर्ण होता है एवं फलकी इच्छासे तथा अहंकारसे युक्त होकर किया जाता है, वह राजस है और जो कर्म परिणाम, हानि-लाभ, धनव्यय, हिंसा और सामर्थ्य आदि का विचार न करके किया जाता है, वह तामस है।

जो कर्त्ता फलकी कामनासे रहित, अहंकारशून्य, धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें हर्ष और शोकादि विकारोंसे शून्य रहता है, वह सात्त्विक है। आसक्तियुक्त, कर्म फलकी इच्छा रखनेवाला, लोभी, हिंसक, अशुद्धाचारी तथा हर्ष-शोकके वशीभूत कर्त्ता राजस कर्त्ता है। और जो कर्त्ता असमाहित (इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला), अविवेकी, घमण्डी, धूर्त, दूसरोंकी जीविका नष्ट करनेवाला, शोकयुक्त, आलसी और दीर्घसूत्री है, वह तामस है।

बुद्धि भी तीन प्रकारकी होती है। जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्गको, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको, भय और अभयको, बंधन और मोक्षको यथार्थ रूपमें जानती है, वह सात्त्विकी बुद्धि है। जो धर्म और अधर्मको, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको यथार्थरूपमें नहीं जानती—यथार्थ ज्ञानके अभावमें धर्म और अधर्मके निरुपणमें जिस बुद्धिके द्वारा मनुष्यको संदेह पैदा हो जाता है, उसे राजसी बुद्धि कहते हैं। और जो बुद्धि अधर्मको भी धर्म मान लेती है तथा इसी प्रकार सब विषयोंमें विपरीत धारणा कराती है, वह तामसी है।

जो धृति ध्यानयोगके द्वारा मन प्राण और इन्द्रियों को नियमित करती है, वह सात्त्विकी है। जो धृति कर्त्तापनके अभिमानमें जकड़ कर फलकी कामनासे धर्म, अर्थ और कामको धारण कराती है, वह धृति राजसी है तथा जिस धृतिके द्वारा मनुष्य विवेक रहित होकर निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और उन्मत्तता को छोड़ता नहीं—उन्हें धारण किये रहता है, वह धृति तामसी कहलाती है। जो सुख प्रारंभकालमें विषतुल्य, परन्तु परिणाममें अमृत-तुल्य और आत्मबुद्धि के प्रसन्नताका कारण होता है, वह सुख सात्त्विक है। परन्तु जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण भोगकालमें अमृत-तुल्य लगने

पर भी परिणाममें विष तुल्य होता है—लौकिक और पारलौकिक दुःखोंका हेतु होता है—वह राजस सुख है। और जो सुख भोगकालमें तथा परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला होता है—निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न वह सुख तामस है। इस तरह संसारमें ऐसा कोई भी प्राणी या पदार्थ नहीं है, जो त्रिगुणमयी मायाके इन तीन गुणोंसे रहित हो।

इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारोंवर्णोंके मनुष्य भी तीन गुणोंके अन्तर्गत हैं। सात्त्विक गुणोंसे युक्त स्वभाववाला मनुष्य—ब्राह्मण, सत्त्व और रजगुणोंसे युक्त स्वभाववाला व्यक्ति—क्षत्रिय, रजस्तमः गुणोंसे युक्त स्वभाववाला मनुष्य—वैश्य और तमोगुण स्वभावका मनुष्य—शूद्र है।

शम (अन्तर इन्द्रियोंका निग्रह), दम (बाह्य इन्द्रियोंका दमन), तपस्या, शौच (बाहर-भीतरकी शुद्धि, क्षमा, सरलता, शास्त्रीय ज्ञान, विज्ञान (परतत्त्व सम्बन्धी असाधारण ज्ञान और अनुभव) तथा आस्तिकता—ये सब ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं। शूरवीरता, तेज, धैर्य,कुशलता, युद्धसे न भागना, दान देना और शासन करनेकी पटुता—ये सब क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं। कृषिकार्य, गो-पालन और वाणिज्य-व्यवसाय—ये सब वैश्योंके स्वाभाविक कर्म हैं तथा सभी वर्णोंकी सेवा करना शूद्रोंका स्वाभाविक कर्म है। इन गुणोंके अनुसार वर्ण निरूपण करना ही शास्त्रीय विधि है। किन्तु वंश परम्परा द्वारा वर्ण निश्चय करनेकी प्रथा शास्त्र-सम्मत नहीं है। प्रत्येक वर्णका मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंमें तत्पर रह कर ज्ञान-निष्ठाको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। अतएव स्वधर्ममें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य चराचर विश्वके सृष्टिकर्त्ता और सर्वव्यापक परमेश्वरकी आराधना द्वारा भगवत्प्राप्ति रूप परम-सिद्धिको प्राप्त कर सकता है। अच्छी तरहसे आचरण किये हुए दूसरोंके धर्मसे अपना गुणरहित धर्म ही श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने स्वाभाविक कर्मोंका—चाहे वह दोषयुक्त ही क्यों न हों आचरण करनेसे मनुष्य पापका भागी नहीं होता। अतएव दोषयुक्त होनेपर भी स्वाभाविक कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिए; क्योंकि धूँएसे ढकी हुई आगकी तरह सभी कर्म किसी न किसी दोषसे युक्त हैं। परन्तु कर्मफलकी कामना, कर्त्तापनके अहंकार तथा आशक्तिसे रहित होकर ज्ञानी व्यक्ति कर्म संन्यास द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसीको नैष्कर्म्य-सिद्धि कहते हैं। नैष्कर्म्य-सिद्धि प्राप्त होनेपर संशयरहित बुद्धिसे युक्त, सात्त्विकी धृति द्वारा अपने अन्तःकरण और इन्द्रियोंको वश में करनेवाला, शब्द आदि विषयों तथा राग-द्वेषका त्याग करनेवाला, एकान्त और पवित्र देशका सेवन करनेवाला, नियमित भोजन करनेवाला (मिताहारी), मन, वाणी और शरीरको भलीभाँति वशमें करने वाला, सदा, आत्मध्यानमें लगा हुआ, विषयोंमें अनासक्त तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रहको त्यागकर ममतारहित और शान्ति-युक्त ज्ञानी पुरुष ही ब्रह्मभावको प्राप्त करनेके योग्य होता है।

आत्माका स्व-स्वभावमें स्थित होना ही ब्रह्मभाव की प्राप्ति है। ब्रह्मभावको प्राप्त हुआ मनुष्य ही शोक और आकांक्षासे रहित होकर तथा समस्त प्राणियोंमें सम भाव रखता हुआ अन्तमें भगवान्‌के प्रति परा अर्थात् विशुद्ध भक्तिको प्राप्त करता है। उस परा भक्तिके द्वारा ही भगवानका यथार्थ स्वरूप तत्त्वतः जाना जा सकता है तथा उनके धाममें प्रवेश किया जा सकता है भगवानके परायण हुआ कर्म-योगी सम्पूर्ण कर्मोंको करता हुआ भी भगवानकी कृपासे अविनाशी वैष्णव पद अर्थात वैकुंठ आदि धामको प्राप्त हो जाता है। इसलिये दृष्ट-अदृष्ट समस्त कर्मोंको भगवानके अर्पण करके भगवान्‌के ही परा-यण होना तथा उनमें ही चित्तको लगाना कर्त्तव्य है। इस प्रकार भगवत् परायण होनेपर भगवानकी कृपासे अनायास ही समस्त प्रकारके विघ्न-बाधाओं और दुःखोंको पार किया जा सकता है; पर यदि अहङ्कार के वश होकर भगवदुपदेशोंको ग्रहण नहीं करनेसे विनाश अनिवार्य है। यदि कोई अहंकारका आश्रय-

कर कर्मसे विमुख होना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर पायेगा। प्रकृतिके द्वारा परवश होकर वह वैसा करनेके लिये बाध्य है।

जो संसारके समस्त व्यापारके कर्त्ता हैं, जो संसारके समस्त व्यापारके संचालक हैं, वे सर्वशक्तिमान् और सर्वान्तर्यामी परमेश्वर सम्पूर्ण प्राणियों की हृदयरूपी गुहामें स्थित होकर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार (जैसे सूत्रधार पुतलीको नचाता है उसी प्रकार) घूमता है। कर्मके विषयमें ईश्वर प्रयोजक कर्त्ता हैं; जीव परवश हुआ स्वभावानुसार कर्म करनेके लिये बाध्य है। अतएव सब प्रकारसे उस सर्वनियन्ता सर्वेश्वरकी शरणमें जाना ही परम कर्त्तव्य है। उस परमेश्वरकी कृपासे ही परम शान्तिको तथा परम धाम वैकुण्ठको प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार यह गुह्यसे भी गुह्यतर ज्ञान मैंने तुमको कह दिया। अब भलीभाति विचार कर जैसा उचित समझ, करो।'

इतना सुनने पर भी अर्जुनको चुप देख कर भगवान् फिर बोले—'अर्जुन! पिछले अध्यायोंसे लेकर अब तक मैंने तुमको जो सब गुह्य, गुह्यतर तथा गुह्यतम उपदेश प्रदान किये हैं, अब तू उन सब से भी परम गुह्यतम अर्थात् सम्पूर्ण गोपनीयोंसे भी अत्यन्त गोपनीय परम रहस्ययुक्त उपदेशको सुन; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, इसीलिये मैं तुझे यह परम हितकारी उपदेश प्रदान करूँगा। तू मुझ श्रीकृष्णमें मनको स्थिर करके मेरा ही भजन कर अर्थात् मेरा ही भक्त हो जा, मेरी ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पूजा कर, मुझको ही नित्य नमस्कार कर। ऐसा करनेसे तू मुझे अवश्य ही प्राप्त होगा— मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ। यही मेरा चरम उपदेश है।'

उपसंहारमें भगवान् अर्जुनको शीघ्र-से-शीघ्र भगवत्प्राप्तिका उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि अनेक मनुष्य अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मको तत्परतासे पालन करते हैं, किन्तु उन धर्मोंके पालनसे मनोवांछित फल को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है तथा उससे बहुत ही विलम्ब होगा। इसलिये उन सम्पूर्ण धर्मोंको सम्पूर्ण रूपसे त्याग कर एकमात्र सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी शरण लेनेसे, वे पूर्वोक्त धर्मोंके अपालनजन्य पापोंसे मुक्त कर तुझे सब प्रकारसे अपना लेंगे। अर्थात् गृहस्थ व्यक्तिके लिये पंच-पापोंको नष्ट करनेके लिये देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ और भूतयज्ञ— इन पाँच यज्ञोंका अनुष्ठान करना स्मृतिशास्त्रोंमें आवश्यक बतलाया गया है, किन्तु श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त यह है—

देवर्षि-भूताप्त-नृणां पितृणां
न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥
(श्रीमद्भा० ११।५।४१)

हे राजन! जो मनुष्य अहं भावको त्याग कर सब प्रकारसे परम-शरणीय भगवान् मुकुन्दकी शरण में चला जाता है, वह साधारण मनुष्योंकी तरह देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों, कुटुम्बियों और अतिथियोंका ऋणी नहीं होता, श्रीभगवान्की सेवा और संतोष-विधान द्वारा सबको तृप्त करता हुआ परम पद (कृष्ण-प्रेम) को लाभ कर लेता है। गीताका यही चरम और परम उपदेश है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ८, पृष्ठ १६२ से आगे]

हम नीचे गोविन्द भाष्यकी 'सूक्ष्मटीका' में श्रीमन्महाप्रभुके सम्बन्धमें बलदेव प्रभु द्वारा रचित मंगलाचरण श्लोकका उद्धार कर रहे हैं—

गजपतिरनुकम्पा-सम्पदा यस्य सद्यः
समजनि निरवद्यः सान्द्रमानन्दमूर्च्छन् ।
निवसतु मम तस्मिन् कृष्णचैतन्य-रूपे
मतिरतिमधुरिम्ना दीप्यमाने मुरारौ ॥

(श्रीबलदेवकृत गोविन्दभाष्यटीका मंगलाचरण श्लोक)

—जिनकी कृपारूप सम्पत्तिके प्रभावसे सम्राट प्रतापरुद्र अत्यन्त उज्ज्वल आनन्द-स्वरूप श्रीचैतन्य महाप्रभुको प्राप्त कर तत्क्षण दोषरहित (पवित्र) हुए थे, अतिशय माधुर्यसे देदीप्यमान उन श्रीकृष्णचैतन्यरूप मुरारीके चरणोंमें मेरी मति लगी रहे ।

श्रीबलदेव प्रभुने इस श्लोकको 'प्रमेय-रत्नावली' के अतिरिक्त 'सिद्धान्तरत्न' में भी मंगलाचरणके द्वितीय श्लोकके रूपमें व्यवहार किया है । इस श्लोक में श्रीमन्महाप्रभुको 'अतिशय माधुरी द्वारा देदिप्यमान श्रीकृष्णचैतन्य साक्षात् मुरारी हरि' के रूपमें वर्णन किया है । इस उक्तिकी तुलना श्रीजीवपादके 'स्व-सम्प्रदायसहस्राधिदैव'—वाक्यसे करने पर श्री बलदेवके वाक्यकी माधुरी स्पष्ट ही अनुभव की जा सकती है, यद्यपि श्रीजीवगोस्वामी प्रभुने 'सर्वसम्वादिनी' के मंगलाचरणमें 'दुर्लभ-प्रेम-पीयूषमय-गङ्गा-प्रवाह-सहस्रं स्व-सम्प्रदाय-सहस्राधिदैवम् श्रीकृष्ण-चैतन्य देव नामानं श्रीभगवन्तं" (क) द्वारा महाप्रभुका माहात्म्य वर्णन किया है ।

अस्तु, श्रीबलदेव विद्याभूषण और श्रीजीव गोस्वामीकी वन्दनाओंमें तत्त्वतः कुछ भी अंतर नहीं है । दोनोंने समान रूपसे चैतन्य महाप्रभुको साक्षात् भगवान् मान करके वन्दना की है । हाँ जीव गोस्वामीने जहाँ सर्वसम्वादिनीके प्रारंभमें ही श्रीमन्महाप्रभुका तत्त्व निरूपण किया है, वहाँ श्रीबलदेव प्रभुने गोविन्द-भाष्यके प्रारम्भमें उसे न करके उपयुक्त प्रसंग पर दूसरे-दूसरे स्थानों में श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके पार्षद-भक्तोंका गुणगान किया है ।

ध्यान देनेकी बात है, रसिकमोहन विद्याभूषण महोदयने स्व-सम्प्रदायसहस्राधिदैवका अर्थ-'स्वकीय सम्प्रदायके परम अधिदेवता' किया है; किन्तु 'वाद' ग्रन्थके लेखकने उसका अर्थ-अपने चलाये हुए हजार हजार सम्प्रदायोंका नित्य अधिदेवता—लिखा है ।

यहाँ पण्डित-प्रवर रसिकमोहन विद्याभूषण महोदयके अनुवादके साथ सुन्दरानन्दके अनुवादकी तुलना करनी आवश्यक है । जैसा भी हो, अधिक समालोचनामें प्रवृत्त न होकर दोनों अनुवादों को सत्य मान लेने पर भी बलदेव विद्याभूषण और जीव गोस्वामीके विचारोंमें तनिक भी पार्थक्य नहीं दृष्टिगोचर होता । अधिकन्तु 'श्रीमन्महाप्रभु द्वारा चलाये हुए हजारों-हजारों सम्प्रदायोंके अधिदेवता' से विद्याविनोद महाशयका क्या तात्पर्य है-समझना कठिन है । क्योंकि तहाप्रभुने तो हजार-हजार सम्प्रदाय नहीं चलाया है; केवल एक ही सम्प्रदाय चलाया है, जिसे हम विशुद्ध 'गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय' कहते हैं । परन्तु यदि वे स्वयं सहजिया दलमें मिल गये हों और सहजिया दलको भी महाप्रभुके सम्प्रदायमें मानने लगे हों, तो वे ऐसा माननेके लिये स्वतन्त्र हैं । वे ही क्यों आजकल अनेक अपसम्प्रदाय महाप्रभुके

(क) सर्व-सम्वादिनी—बंगीय साहित्य-परिषत् मन्दिरसे श्रीरामकमल सिंह द्वारा १३२७ बंगाब्दमें प्रकाशित संस्करणके पृष्ठ-१ से ।

नामपर सारे भारतमें चल रहे हैं। आजसे लगभग २०० वर्ष पहले ही एक सिद्ध तोताराम बाबाजीने तत्कालीन तेरह अपसम्प्रदायोंकी एक तालिका प्रस्तुत की थी, जो इस प्रकार है:—

आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, साँई ।
सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त्त, जाति-गोंसाई ॥
अतिबाड़ी, चूड़ाधारी गौराङ्ग-नागरी ।
तोता कहे,—एइ तेरह संग नाहि करि ॥

आजकल उपरोक्त तेरहोंके अतिरिक्त और भी अनेक नये-नये अपसम्प्रदाय चल पड़े हैं, जिनमें निम्नलिखित ३६ प्रधान हैं—

(१) किशोरीभजा, (२) भजन खाजा, (३) गुरु-त्यागी, (४) गुरु-भोगी, (५) असीमा-त्यजा प्रणतिभजा वासुदेवीखल, (६) दारी-संन्यासी, (७) शिष्या-विलासी, (८) गुरुप्रसादी दल, (९) उपनयन-त्यजा, (१०) परमहंससाजा, (११) सांकर-वर्ण, (१२) असत्संग, (१३) द्विपाद-भंग, (१४) सेवापराधी, (१५) रामदास, (१६) हरिदास, (१७) हरि बोलिया मत, (१८) निताई राधा गौर श्याम, (१९) सीतारामिया, (२०) राधाश्यामिया, (२१) साउड़ीदल, (२२) घर-पागला, (२३) गुड़ी-बाबला, (२४) वर्ण-विरागी, (२५) आश्रमरोधी, (२६) गैरिक-विरोधी, (२७) धामापराधी, (२८) नामापराधी, (२९) वैष्णवापराधी, (३०) अद्वयवादी—मध्व-विरोधी, (३१) कानुप्रिया, (३२) नाथ-भैया, (३३) गौड़ेश्वर, (३४) वंशीधर, (३५) उलईचण्डी, (३६) स्मरण पन्थी—अधोमंथी, (३७) युगल भजनकारी, (३८) दादा और माँ, (३९) खेपा वामा ।

तोताराम बाबाजीकी तालिका और आधुनिक ३९ अपसम्प्रदायोंको मिलाकर कुल ५२ अपसम्प्रदाय आजकल प्रबल हो उठे हैं। किन्तु अनेक अनुसन्धान करने पर भी हजार-हजार सम्प्रदायोंका पता नहीं चलता। हाँ, एक तरहसे इस समस्याका हल निकाला जा सकता है। कुछ लोग एक-एक शिष्यको अथवा एक-एक शिष्य-परम्पराको ही अलग-अलग सम्प्रदाय मानते हैं। ऐसी दशामें श्रीमन्महाप्रभु केवल अपने अनुगत सम्प्रदायके ही अधिदेवता स्वीकृत होंगे; किंतु यह अर्थ अत्यन्त संकीर्णता-सूचक है। श्रीमन्महाप्रभु स्वयं भगवान अवतारी पुरुष एवं स्वयं मुरारी श्रीकृष्ण हैं। 'कोई माने कोई ना माने, सब हैं उनके दास।' के अनुसार वे सबके अधिदेवता हैं। अतएव बलदेव विद्याभूषण द्वारा रचित स्तवका भाव श्रीजीव गोस्वामीके स्तवके भावसे पृथक् मानकर उनकी अवज्ञा करना महाअपराध है। सुबोध बाबू आपत्ति कर सकते हैं कि श्रीगौरहरिको मध्व-सम्प्रदायका अधस्तन मानना ही बलदेवका अन्याय है। हम (घ) और (ङ) में इसका विस्तृत उत्तर देंगे।

श्रीमन्महाप्रभु स्वयं भगवान् है—साक्षात् कृष्ण-चन्द्र हैं। इस विषय में मतभेद नहीं है। किन्तु, स्वयं भगवान् किसी दूसरे व्यक्तिको अपना गुरु मानकर उसके निकट दीक्षा-शिक्षा ग्रहण करनेकी लीला नहीं कर सकते—ऐसा विचार अभिनव है। श्रीरामचन्द्र-जीने वशिष्ठ मुनिसे, श्रीकृष्णने सांदीपनी मुनिसे श्रीमहाप्रभुजीने श्रीईश्वरपुरीसे दीक्षा-शिक्षा प्राप्त करने की लीला दिखलाई थी कि नहीं। इन कार्योंसे भगवत्ताको तनिक भी आँच नहीं लगती। स्वयं भगवान् जगत्को शिक्षा देनेके लिये ही ऐसी-ऐसी लीलाएँ करते हैं अतः महाप्रभुके किसी सम्प्रदायमें अन्तर्भूत होनेसे उनकी भगवत्ता अथवा उनके तत्त्वमें कुछ हेर-फेर होनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

इसके अतिरिक्त श्रीबलदेव विद्याभूषणने गोविन्द भाष्यकी टीकाके मंगलाचरणमें गुरु-परम्पराका उल्लेख करते समय श्रीमन्महाप्रभुजीके सम्बन्धमें लिखा है—'श्रीकृष्णप्रेम दानेन येन निस्तारितं जगत्।' अर्थात् जिन्होंने कृष्णप्रेम दानकर जगत्का उद्धार किया है। इसके द्वारा बलदेव विद्याभूषणने श्रीमन्महाप्रभुजीको कृष्ण-प्रेम-दाता माना है। दूसरी तरफ मध्वाचार्यके सम्बन्धमें वे लिखते हैं—

आनन्दतीर्थ-नामा सुखमय-धामा यतिर्जीयात् ।
संसारार्णव-तरणि यमिह जनाः कीर्त्तयन्ति बुधाः ॥

उक्त श्लोकमें मध्वाचार्यको संसार-सागरको पार होनेके लिये नौका-स्वरूप माना गया है। अब देखिये, एक श्रीकृष्ण-प्रेम दान करनेवाले हैं, और दूसरे संसार-मोचन करनेवाले हैं। इन दोनोंमें से विद्याविनोद महाशय किसे श्रेष्ठ मानेंगे? संसार-मोचनकी अपेक्षा कृष्ण-प्रेमका दान कार्य अनन्त गुण श्रेष्ठ है—इसे प्रत्येक गौड़ीय वैष्णव स्वीकार करेगा। श्रीकृष्णदास कविराजने मंत्र और महामंत्रका पार्थक्य विवेचन करते हुए लिखा है—

कृष्ण-मंत्र हैते हय संसार मोचन ।
कृष्ण नाम हैते पाय कृष्णेर चरण ॥ (क)

कृष्णनामको ही महामंत्र कहते हैं; जिससे कृष्ण-प्रेम प्राप्त होता है। श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुने 'श्रीकृष्ण-प्रेम दानेन येन निस्तारितं जगत्'—द्वारा श्रीमन्महाप्रभुको मध्वाचार्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाया है। मध्वाचार्यके ऊपर मंत्र द्वारा संसार-मोचन कार्यका भार सौंपा गया है। यद्यपि इसके द्वारा महाप्रभुकी अपेक्षा मध्वाचार्यकी श्रेष्ठता नहीं दिखलायी गयी है, तथापि इसे मान लेनेमें भी कोई दोष नहीं है। क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं व्रजेन्द्र-नन्दन कृष्ण हैं और मध्वाचार्य उनके भक्त हैं। ऐसी दशामें भगवानकी अपेक्षा उनके भक्तकी श्रेष्ठता प्रदर्शित करना तो भगवानको भी अभीष्ट है। 'मद्भक्तपूजाभ्यधिका' आदि वाणियोंके द्वारा भगवान्‌ने स्वयं अपनी पूजाकी अपेक्षा भक्त-पूजाका श्रेष्ठत्व स्थापन किया है। इससे भगवत्ताकी हानि नहीं होती, वरन् भगवत्ताका माधुर्य और भी अनंतगुणा अधिक उज्ज्वल हो जाता है। श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—'भक्तोंके सेवक ही हमारे प्रिय भक्त हैं। हमारे (भगवानके) सेवक भक्त कोटिमें नहीं आते। हमारे भक्तोंके सेवक ही मुझे अधिक प्रिय हैं—

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः ।
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः ॥ (ख)
(आदिपुराण)

भगवान् भक्तोंके अधीन होते हैं—यह गौड़ीय वैष्णवोंका सर्वोत्तम विचार है। इसके द्वारा भगवान्‌की महिमा ही सूचित होती है।

(क्रमशः)

जैवधर्म

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ८, पृष्ठ १८६ से आगे]

बाबाजी—'कृष्णके अनन्त चिद्गुणोंमें 'भक्तवात्सल्य' एक गुण है। इसी गुणसे द्रवित होकर भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्ति द्वारा भक्तोंको एक प्रकारकी चिन्मयी शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे भक्तजन स्वप्रकाश भगवत्स्वरूपका तथा उनकी सम्पूर्ण चिन्मयीलीलाका साक्षात् दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु अभक्तोंके नेत्र और कर्णादि इन्द्रिय-समूह मायिक होनेके कारण ये लोग भगवान्‌की चिल्लीला और मानव इतिहासमें कुछ अन्तर नहीं देख पाते।'

व्रजनाथ—'तो क्या भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवोंके प्रति कृपा करनेके लिये अवतीर्ण नहीं होते?'

बाबाजी—'निस्सन्देह भगवान्‌का अवतार सम्पूर्ण

(क) ४४२ गौराब्दमें श्रीगौड़ीय मठसे प्रकाशित चैतन्यचरितामृतके संस्करणका आ० ७।२२)।

(ख) श्रीकृष्णने कहा—'हे अर्जुन! जो मेरा भजन करते हैं, वे मेरे भक्त नहीं हैं। मेरे सर्वोत्तम भक्त तो वे हैं जो मेरे भक्तोंका भजन (सेवन) करते हैं।

जगतके कल्याणके लिये होता है। उस अवतार-लीलाको भक्तजन शुद्ध चिल्लीलाके रूपमें दर्शन करते हैं। अभक्तजन उसीको साधारण मानव चरित्र जैसा (जड़-मिश्र तत्त्वके रूपमें) दर्शन करता है; फिर भी वस्तु-शक्तिके प्रभावसे उनमें एक प्रकारकी सुकृति पैदा होती है। वही सुकृति क्रमशः पुष्ट होने पर कृष्णभक्तिके प्रति अनन्य श्रद्धा उत्पन्न करा देती है। अतः भगवद् अवतारसे अखिल विश्वके जीवोंका उपकार होता है; क्योंकि वही श्रद्धालु जीव अन्यन्य भक्तिका साधन करते-करते भगवान्के चिन्मय-स्वरूप और उनकी चिल्लीलाको देखनेमें एक दिन समर्थ होता है।'

व्रजनाथ—'वेदोंमें कृष्णलीलाका सर्वत्र स्पष्ट उल्लेख क्यों नहीं है ?'

बाबाजी—'वेदोंमें यत्र-तत्र-सर्वत्र ही श्रीकृष्ण लीलाका वर्णन है। वह वर्णन कहीं कहीं मुख्य-वृत्तिका अवलम्बन करके किया गया है, तो कहीं कहीं गौण-वृत्तिका अवलम्बन करके। शब्दोंकी दो प्रकार की वृत्तियाँ (शक्तियाँ) होती हैं, जिनसे शब्दोंका अर्थ निर्णय होता है—अभिधा वृत्ति और लक्षणा-वृत्ति। इनको मुख्य वृत्ति और गौण वृत्ति भी कहते हैं। अभिधा-वृत्तिका अवलम्बन कर 'श्यामाच्छबलं प्रपद्ये' इत्यादि मंत्रोंमें तथा छन्दोग्योपनिषत्के अन्तिम भागमें रसकी नित्यता तथा मुक्त जीवोंकी उनके अपने-अपने रसके अनुसार कृष्ण सेवाका वर्णन किया गया है। शब्दोंकी लक्षणा वृत्ति ही गौण-वृत्ति है। याज्ञवल्क्य गार्गी और मैत्रेयी-संवादके प्रारम्भमें लक्षणा वृत्ति द्वारा कृष्णलीलाका वर्णन है और अंतमें मुख्य वृत्ति द्वारा अर्थात् अभिधा वृत्ति द्वारा कृष्णकी श्रेष्ठता स्थापित की गयी है। वेदोंमें कहीं कहीं अनन्य पद्धति के द्वारा भगवान्की नित्य लीलाको लक्ष्य किया गया है और अनेक जगहों पर व्यतिरेक पद्धतिका अवलम्बन कर ब्रह्म और परमात्माकी महिमा वर्णन की गयी है। वस्तुतः श्रीकृष्णका वर्णन करना ही वेदों की प्रतिज्ञा है।'

व्रजनाथ—'बाबाजी महाशय ! भगवान् ही परम तत्त्व हैं—इसमें सन्देह नहीं, किन्तु ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश आदि देवताओंकी वास्तविक स्थिति क्या है ? —बतलानेकी कृपा करें। कुछ ब्राह्मण लोग महादेवको ही सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मतत्त्व मान कर उनकी उपासना करते हैं। हम ऐसे ही ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए हैं, जन्मसे लेकर अब तक वैसी ही बातें कहते और सुनते आये हैं। मैं इनका यथार्थ तत्त्व जानना चाहता हूँ।'

बाबाजी—'साधारण जीव, उपास्य देव-देवी और भगवान् के गुणोंको मैं तुम्हें पृथक्-पृथक् बतला रहा हूँ। इन गुणोंके तारतम्यके अनुसार तुम आसानीसे सर्वश्रेष्ठ उपास्य-तत्त्वका पता लगा सकते हो—

अयं नेता सुरम्याङ्गः सर्व-सुलक्षणान्वितः ।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान वयसान्वितः ॥
विविधाद्भुत भाषाविद् सत्यवाक्यः प्रियंवदः ।
वावदूकः सुपाण्डित्यो बुद्धिमान् प्रतिभान्वितः ॥
विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढ़-व्रतः ।
देश-काल-सुपात्रज्ञः शास्त्र-चक्षुः शुचिर्वशी ॥
स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गंभीरो धृतिमान् समः ।
वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्य-मानकृत् ॥
दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागत-पालकः ।
सुखी भक्त-सुहृत् प्रेम-वश्यः सर्व-शुभकरः ॥
प्रतापी कीर्तिमान रक्त-लोकः साधु-समाश्रयः ।
नारीगण-मनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् ॥
वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्त्तिताः ।
समुद्रा इव पञ्चाशद् विगाहा हरेरमी ॥
जीवेष्वेते वसन्तोऽपि विन्दु-विन्दुतया क्वचित ।
परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे ॥ (क)

(क) नायक स्वरूप श्रीकृष्णके गुण ये हैं— (१) अत्यन्त मनोहर अंग (२) सर्व सुलक्षणोंसे युक्त, (३) सुन्दर, (४) महातेजस्वी, (५) बलवान, (६) किशोर वयसयुक्त, (७) विविध प्रकारके अद्भुत भाषाविद्, (८) सत्य वाणी बोलनेवाले, (९) मृदुभाषी, (१०) वाक्पटु, (११) बुद्धिमान्, (१२) सुपण्डित, (१३) प्रतिभाशाली, (१४)

अथ पञ्च-गुणा ये स्युरंशेन गिरीशादिषु ।
सदा स्वरूप-संप्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः ।
सच्चिदानन्द-सान्द्रांगः सर्वसिद्धि निषेवितः ॥ (क)
अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशादि-वर्तिनः ।
अचिन्त्य-महाशक्तिः कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रहः ॥
अवतारावली बीजं हतारि-गति दायकः ।
आत्मारामगणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः ॥ (ख)
सर्वाद्भुत चमत्कार लीला-कल्लोल-वारिधिः ।
अतुल्य-मधुर प्रेम-मण्डित प्रिय-मण्डलः ॥
त्रिजगन्मानसाकर्षी-मुरली-कल-कूजितः ।
असमानोर्द्ध-रूप-श्रीः विस्मापित-चराचरः ॥ (ग)
लीला-प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्ये वेणु रूपयोः ।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥ (घ)

ये ६४ गुण सच्चिदानन्द श्रीकृष्णमें पूर्णमात्रामें शुद्ध चिद्भावमें नित्य प्रकाशित हैं। शेषोक्त चार गुण श्रीकृष्ण-स्वरूपको छोड़कर उनकी किसी भी दूसरी विलास-मूर्तियोंमें नहीं होते। इन चारों गुणोंको छोड़कर अवशिष्ट ६० गुण पूर्णमात्रामें और पूर्णचिद् रूपमें चिद्घन-विग्रह युक्त नारायणमें शोभा पाते हैं शेषोक्त ६ गुणोंको छोड़कर बाकी ५५ गुण आंशिक रूपमें ब्रह्मा और शिव आदि देवताओंमें पाये जाते हैं। पहले के ५० गुण समस्त जीवोंमें बिन्दु रूपमें होते हैं। शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, और इन्द्र—ये देवता गण भगवान के आंशिक गुणोंसे युक्त होते हैं तथा संसाररूप व्यापारको चलानेके लिये अधिकार प्राप्त भगवत् विभूति रूप एक प्रकारके अवतार विशेष हैं। ये सब देवता स्वरूपतः भगवानके दास हैं। उनकी कृपा से बहुतोंने भगवद्भक्ति प्राप्त की है। जीवनके अधि-

---

विदग्ध अर्थात् रसिक, (१५) चतुर, (१६) निपुण, (१७) कृतज्ञ, (१८) सुदृढ़-व्रत, (१९) देश-कालपात्रके सम्बन्धमें सुविज्ञ, (२०) शास्त्र-दृष्टि युक्त, (२१) पवित्र, (२२) जितेन्द्रिय, (२३) स्थिर, (२४) संयमी, (२५) क्षमाशील, (२६) गंभीर, (२७) धीर, (२८) सम, (२९) वदान्य अर्थात् उदार, (३०) धार्मिक, (३१) शूर, (३२) करुण, (३३) मानद अर्थात् दूसरोंको मान देनेवाला, (३४) दक्षिण अर्थात् अनुकूल, (३५) विनयी, (३६) लज्जायुक्त, (३७) शरणागत पालक, (३८) सुखी, (३९) भक्त-सुहृद, (४०) प्रेमके अधीन, (४१) मङ्गलकारी, (४२) प्रतापी, (४३) कीर्तिशाली, (४४) सबका प्रिय, (४५) सज्जनोंका पक्ष ग्रहणकारी, (४६) नारीमनोहारी, (४७) सबका आराध्य, (४८) ऐश्वर्यशाली, (४९) श्रेष्ठ, (५०) ईश्वर। ये ५० गुण भगवान् श्रीकृष्णमें समुद्रकी तरह अगाध और असीम रूप में वर्तमान हैं। ये उपरोक्त ५० गुण जीवोंमें बिन्दु-बिन्दु रूपमें वर्तमान हैं, किन्तु पुरुषोत्तम भगवान्में पूर्णमात्रामें हैं।

(क) श्रीकृष्णके अन्य ५ गुण जो ब्रह्मा, शिवादि देवताओंमें वर्तमान हैं, वे ये हैं—

(१) सदा स्वरूपमें स्थिति, (२) सर्वज्ञ, (३) नित्य-नवीन, (४) सच्चिदानन्द-घनीभूत-स्वरूप, (५) सर्व-सिद्धियोंसे सेवित। उपरोक्त ५० + ५ = ५५ गुण देवताओंमें आंशिक परिणाममें वर्तमान हैं।

(ख) लक्ष्मीपति नारायणमें उपरोक्त ५५ गुणोंके अलावा और भी ५ गुण होते हैं—

(१) अचिन्त्य महाशक्तिशाली, (२) कोटि ब्रह्माण्ड-विग्रहत्व (३) समस्त अवतारोंके मूल बीज या कारण (४) अपने हाथोंसे मारे गये को गतिदायक, (५) आत्माराम जीवोंके भी आकर्षक। ये पाँच गुण ब्रह्मा, शिव आदिमें नहीं होते, किन्तु श्रीकृष्णमें अत्यन्त अद्भुतभावसे पूर्णरूपमें वर्तमान हैं।

(ग) उपरोक्त ५०+५+५ गुणोंके अतिरिक्त श्रीकृष्णमें और भी ४ गुण अधिक हैं। ये ४ गुण हैं—(१) सर्वाधिक चमत्कारपूर्ण लीलारूप तरङ्गोंके अगाध समुद्र, (२) अतुलनीय मधुरप्रेम द्वारा सुशोभित तथा अपने प्रियपात्रोंके मङ्गल-स्वरूप, (३) तीनों लोकोंको आकर्षित करनेवाली मुरलीकी तान, (४) चराचर विश्वको चकित और मुग्ध कर देनेवाली अतुलनीय रूप-श्री।

(घ) (१) लीला माधुरी, (२) प्रेम-माधुरी, (३) रूप-माधुरी, और (४) वेणु-माधुरी—ये श्रीकृष्णके असाधारण गुण हैं। इन चारोंको लेकर श्रीकृष्णके ६४ गुण और लक्षण बतलाये गये हैं।

कार भेदसे ये देवता भी जीवोंकी उपास्य-कोटिमें आते हैं। भगवद्भक्तिके अंग-स्वरूप इनकी पूजा करना विधिके अन्तर्गत है। वे कृपा कर अनन्य कृष्ण भक्ति दान करने पर जीव गुरुके रूपमें नित्य पूजित होते हैं। देवदेव महादेव भगवद्भक्तिमें इतने पूर्ण होते हैं कि वे भगवत्तत्त्वसे अभेद जैसा प्रतीत होते हैं यही कारण है कि भ्रान्त मायावादी महादेव को चरम ब्रह्म-तत्त्व मानकर उनकी आराधना करते हैं।

तेरहवाँ अध्याय समाप्त

चौदहवाँ अध्याय

प्रमेयके अन्तर्गत शक्ति-विचार

अजनाथ वृद्ध बाबाजीके कल रातवाले विचारोंसे बड़े ही प्रभावित हुए हैं। आज दिन भर उन्हीं सब विचारों पर गंभीर चिन्तन कर बड़े आनन्दका अनुभव कर रहे हैं। बीच-बीचमें मन-ही-मन कहते—'अहा! श्रीगौराङ्गदेवकी शिक्षाएँ क्या ही अपूर्व हैं? सुननेके साथ ही मानों हृदयमें अमृतका समुद्र लहराने लगता है। जितना ही सुनता हूँ, सुननेकी पिपासा और भी बढ़ती जाती है, बाबाजी महाराजके मुखसे मानों तत्त्वका अमृत बरसता है, जिसे सुन कर मन तृप्त नहीं होता। सिद्धान्त क्या होते हैं, पूरे नपे-तुले हुए होते हैं, उनका कोई भी अंश असंगत नहीं होता। लगता है, उन सिद्धान्तोंके पीछे-पीछे समस्त शास्त्र दौड़ते हुए आरहे हों—उनके एक-एक अक्षरोंका प्रतिपादन करनेके लिये। समझमें नहीं आता, आखिर ब्राह्मण समाज इनकी निन्दा क्यों करता है? मालूम होता है, मायावादके प्रति पक्षपातित्व ही ब्राह्मण-मण्डलीके असैद्धांतिक होनेका कारण है।'

ऐसा सोचते-सोचते वे श्रीरघुनाथ दास बाबाजी की कुटीपर पहुँचे एवं पहले कुटीको और अनन्तर बाबाजी महाशयको दर्शन कर दण्डवत् प्रणाम किये। बाबाजीने उनको बड़े प्रेमसे गले लगा कर अपने निकट ही बैठा लिया।

अजनाथने बैठते-ही-बैठते उत्कण्ठित होकर कहा—'प्रभो! कल आपने मुझे श्रीदशमूलका तृतीय मूल-श्लोक सुनानेको कहा था। उसे सुननेके लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है। कृपा कर उसे सुनाइये।'

अजनाथकी बात सुनकर बाबाजी बड़े आनन्दित हुए और पुलकित होकर कहने लगे—

'पराख्याया: शक्तेरपृथगपि स स्वे महिमनि
स्थितो जीवाख्यां स्वामचिदभिधां तां त्रिपदिकाम्।
स्वतंत्रेच्छः शक्तिं सकल-विषये प्रेरणपरो
विकाराद्यै: शून्य: परम-पुरुषोऽयं विजयते॥
(तीसरा दशमूल)

अर्थात्, अपनी अचिन्त्य पराशक्तिसे अभिन्न होते हुए भी भगवान् स्वतन्त्र इच्छामय हैं; वे परम-पुरुष स्व-महिम-स्वरूपमें नित्य स्थित होते हैं। चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति रूप तीन पदोंसे युक्त अपनी पराशक्तिको उपयुक्त विषयोंके व्यापारमें सर्वदा प्रेरणा करते हैं। ऐसा करते हुए भी स्वयं निर्विकार रहकर वे परम-तत्त्वरूप भगवान् अपने पूर्ण-स्वरूपमें नित्य विराजमान होते हैं।'

अजनाथ—'ब्राह्मण-मण्डलीका कथन यह है कि—परम-तत्त्व ब्रह्मावस्थामें लुप्तशक्ति है और ईश्वरावस्थामें वही व्यक्तशक्ति है। मैं इस विषयमें वेदोंका सिद्धान्त सुनना चाहता हूँ।'

बाबाजी—'समस्त अवस्थाओंमें ही परम-वस्तुकी शक्तिका परिचय पाया जाता है। वेद कहते हैं—

'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च ॥ (क)
(श्वे० उ० ६।८)

चित्शक्तिके सम्बन्धमें—

ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन्
देवात्म-शक्तिं स्व-गुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्म-युक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ (ख)
(श्वे० उ० १।३)

जीवशक्तिके सम्बन्धमें—

अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्त-भोगामजोऽन्यः ॥ (ग)
(श्वे० उ० ४।५)

मायाशक्तिके सम्बन्धमें—

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥ (घ)
(श्वे० उ० ४।९)

'पराऽस्य शक्तिः'—इस वेद-मंत्रमें परम तत्त्वकी श्रेष्ठतम अवस्थामें भी एक पराशक्तिको स्वीकार किया गया है। वेदमें कहीं भी परमतत्त्वकी निःशक्तिक अवस्थाका वर्णन नहीं पाया जाता। उस परम तत्त्वके सविशेष-आविर्भावका नाम भगवान् और निर्विशेष आविर्भावका नाम ब्रह्म है। इस निर्विशेष गुण (ब्रह्म) को भी पराशक्ति ही प्रकाशित करती है। अतएव निर्गुण निर्विशेष ब्रह्ममें भी शक्तिका परिचय पाया जाता है। उस पराशक्तिको वेदों और उपनिषदोंमें कहीं स्वरूप-शक्ति, कहीं चिच्छक्ति और कहीं अन्तरङ्ग-शक्ति कहा गया है। लुप्तशक्ति ब्रह्म वास्तवमें कोई वस्तु नहीं —मायावादियोंका एक काल्पनिक तत्त्व है। निर्विशेष ब्रह्म वस्तुतः मायावादसे परे होता है। वेदमें सविशेष ब्रह्मके संबन्धमें इस प्रकार वर्णन आया है—

(क) उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती; क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्त-पादादि इन्द्रिय प्राकृत नहीं होता। प्राकृत करणके बिना ही उनकी अप्राकृत लीलाका कार्य होता है। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिये उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वरकी अलौकिकी शक्ति नाना-प्रकारकी सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्शक्ति या सम्वित्-शक्ति; सत्शक्ति या सन्धिनी शक्ति और आनन्द शक्ति या ह्लादिनी शक्ति भी कहते हैं।

(ख) तत्त्वज्ञ ऋषियोंने समाधि योगमें स्थित होकर परब्रह्मके गुणोंसे विभावित होकर अपने गुणोंके द्वारा उन भगवान्‌की अत्यन्त रहस्यपूर्ण दिव्य और स्वकीय (स्वरूपभूत) शक्तियोंका साक्षात्कार किया, जो निखिल कारण-समूहके एवं जीव, प्रकृति, काल और कर्मके एकमात्र अधिष्ठाता या नियामक हैं।

(ग) लाल, सफेद और कालेरंगकी अर्थात् सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे युक्त बहुतसे भूत-समुदायको प्रकाशित करनेवाली 'सरूपा' अर्थात् भगवान्‌के समान एक अजाको (अजन्मा, अनादि प्रकृतिको) एक श्रेणीके अज (अज्ञानी जीव) भजन करते हैं। परन्तु दूसरे प्रकारके अज (ज्ञानी) पुरुष उस भोगी हुई प्रकृति का सम्पूर्णरूपसे त्याग कर देते हैं।

(घ) जो सब वेदोंके उपदेश हैं, घृत आदि द्वारा होनेवाले याग, यज्ञ, क्रतु अर्थात् ज्योतिष्टोम आदि विशेष यज्ञ है, नाना-प्रकारके व्रत तथा और भी जो कुछ भूत, भविष्य और वर्त्तमान पदार्थ अर्थात् सम्पूर्ण विश्व है, जिनका वेदोंमें वर्णन पाया जाता है, इन सबको माया-प्रकृतिके अधीश्वर परमात्माने रचा है। इस प्रकार रचे हुए इस जगत्‌में अज जीव-समुदाय उनकी (परमात्माकी) माया द्वारा बँधा हुआ है।

'य एकोऽवर्णो बहुधा शक्ति-योगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति ।' (क)
(श्वे० उ० ४।१)

'य एको जालवानीशत ईशनीभिः
सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥' (ख)
(श्वे० उ० ३।१)

—क्रमशः

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदीया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्य में **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी १६ फाल्गुन, २८ फरवरी, शुक्रवार से २२ फाल्गुन, ६ मार्च, बृहस्पतिवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा । इस महदनुष्ठानमें प्रति-दिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे ।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन एवं नगर-संकीर्त्तन करते हुए **सोलह-क्रोश की परिक्रमा** होगी । गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी **श्रीनृसिंहपल्ली, चाँपाहाटी, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें शिविरादि में** वास कर निशि-यापनपूर्वक परिक्रमा करने की सुव्यवस्था की गई है ।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे । इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे । इति १ फरवरी १९५८

शुद्धभक्त-कृपालेश-प्रार्थी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ।

द्रष्टव्य—विशेष विवरणके लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने अथवा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, चिनसुरा (हुगली) के ठिकाने पर लिखें या भेजें ।

(क) जो एक वर्ण (रंग) होकर भी अपनी विविध शक्तियोंके प्रभावसे अनेक भावोंको (रंगोंको) धारण करता है एवं जिसमें अनेक वर्ण अर्थात् विविध प्रकारकी शक्तियाँ अथवा सम्पूर्ण विश्व निहित है (वे सम्पूर्ण विश्वके सृष्टिकर्त्ता हैं ।)

(ख) जो एक अद्वितीय जगत्‌रूप जालके ईश्वर हैं अर्थात् मायापति हैं, वे अपनी ऐशी-शक्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को नियमित करते हैं ।

प्रचार-प्रसंग

(क) मासून्दी और कान्दर (प. बङ्गाल) में शुद्ध-भक्तिधर्म का प्रचार:—

गत ४ पौष, १६ दिसम्बर बृहस्पतिवारको इन ग्रामके निवासियोंके विशेष आह्वान पर समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य ॐविष्णुपाद परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराजजी कतिपय संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंके साथ कटवा (जहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने संन्यासकी लीला की थी) के समीप मासुन्दी नामक गाँव में पधारे और उस अंचलमें लगातार कई दिनोंतक श्रीमद्भागवत् प्रवचन, कीर्त्तन और छायाचित्रसे भाषण आदि द्वारा शुद्ध भक्तिधर्मका प्रचार किया । तत्पश्चात् निकटवर्ती ग्राम कान्दरके निवासियोंके विशेष अनुरोधसे वहाँ पधार कर श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित विशुद्ध भक्तिधर्मका सफल प्रचार किया है । जब कि वर्तमान विश्वमें धर्मके नाम पर बहुमुखी नास्तिकताकी भयङ्कर दानवी धर्मभीरु साधारण जन-समुदायका गला घोंट रही है, हम इन ग्रामवासियोंकी विशुद्ध सनातन-धर्मके प्रचार और प्रसार के प्रति इस सहयोग और सहानुभूतिकी आन्तरिक भावनाकी प्रशंसा करते है तथा उन्हें धन्यवाद ज्ञापन करते हैं ।

(ख) गोलोकगंज (आसाम) में:—

गत १५ पौष, ३० दिसम्बर, सोमवारको श्रील-आचार्यदेव 'श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ' (आसाम) में पधारे । आजसे एक वर्ष पहले सनातन-धर्मावलम्बी विशुद्ध गौड़ीय वैष्णव आसामवासी भक्तजनों के विशेष अनुरोध और चेष्टासे यहाँ पर 'श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ' के नामसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एक निजस्व प्रचार-केन्द्र स्थापित हुआ है। यहीं पर आयोजित कई धर्म-सभाओंमें आचार्यदेवके बड़े ही सारगर्भित और पाण्डित्यपूर्ण भाषण हुए । पश्चात् २ जनवरीको परम श्रद्धालु भक्त श्रीयुत् निलाम्बरदास महोदयके विशेष अनुरोधसे उनके ग्राम विछनदई पधारे और वहाँ से भिन्न-भिन्न स्थानोंमें आयोजित विराट-विराट जन-सभाओंमें भाषण आदि द्वारा भक्ति धर्मका प्रबल प्रचार किया । तत्पश्चात् १० जनवरीको श्रीयुत कृष्णप्रसाद दासाधिकारीके विशेष आग्रह पर उनके निवासस्थान राङ्गापानी और आसपासके ग्रामों में ५-६ दिनों तक सनातन-धर्मका प्रचार कर श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें पधारे ।

इन स्थानोंमें उन्होंने वज्र-गभीर स्वरसे धर्म-जगत में फैले हुए भ्रष्टाचारों और साधारण भूलों (Comman errors in religion) की ओर जनता का ध्यान आकर्षण कर उनको उनसे बचनेके लिये सावधान किया तथा वास्तव-धर्मके प्रति जाग्रत होने के लिये आह्वान जनाया । उन्होंने आधुनिक धूर्त्त, चरित्रहीन तथा भुंइफोड़ भगवानों (?) से सावधान रहनेकी आवश्यकता पर बल दिया जो आज कल सारे देशमें अपना जाल फैला कर कोमल-श्रद्ध धार्मिक जनताका बहुमुखी विनाश करने पर तुले हुए हैं । आजके घोर नास्तिक्यवादके युगमें अनुकूलका सर्वथा विवेचन कर, राम और कृष्णको कलंकित करनेवाले नास्तिक, आचार-विचारहीन तथा अनार्य आदि समाजों, मिशनों तथा कुसंगोंसे बचकर विशुद्ध आचार-विचारसे युक्त सत्पुरुषों, महापुरुषों, समाजों या मिशनोंसे सम्बन्ध रखकर विशुद्ध भागवत-धर्मका अनुशीलन करना ही हमारा परम कर्त्तव्य है । इसीमें अपना कल्याण है, समाजका कल्याण है, राष्ट्रका कल्याण है और निखिल जगत्के निखिल जीवोंका कल्याण है ।

(ग) आनन्दपाड़ा (२४ परगना, प० बङ्ग) में—

गत २६ पौष, १० जनवरीको उक्त ग्रामके निवासी श्रीपाद गौरेन्दु दासाधिकारी एवं श्रीयुत कृष्णगोपाल वसु और उनके श्रद्धालु भ्राताओंके उद्योगसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रधान स्तम्भस्वरूप श्रीनरहरि 'सेवा विग्रह' प्रभुका तिरोभाव उत्सव खूब धूम-धामके साथ मनाया गया है। इसके उपलक्ष्यमें समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामि श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज और ७-८ ब्रह्मचारी वहाँ पधारे थे। सवेरेसे दोपहर तक और शामको ४ बजेसे लेकर रात १० बजेतक श्रीमद्भागवत प्रवचन, कीर्त्तन और भाषण हुए तथा दोपहरके समय लगभग ४०० व्यक्तियों-को महाप्रसाद दिया गया। इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने आनन्दपाड़ाके निकटवर्ती 'बेड़ा' नामक ग्रामके श्रीयुत नृत्यगोपाल दासाधिकारी महोदयकी चेष्टासे वहाँ भागवत-धर्मका विपुल प्रचार किया। ये उपरोक्त श्रद्धालु महोदयगण अपने यहाँ प्रत्येक वर्ष सनातन-धर्मका प्रचार करनेमें सहायता और सहयोगिता करके समितिके धन्यवादके पात्र होते आ रहे हैं।

(घ) चौबीस परगना (सुन्दर वन) में शुद्ध-भक्तिका प्रचार—

यहाँकी श्रद्धालु जनताके विशेष अनुरोधपर समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्-भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद भगवानदास ब्रह्मचारी, श्रीपाद अद्वैतदास ब्रह्मचारी आदि कतिपय प्रचारकोंके साथ सुन्दरवनमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रचारित शुद्ध-भक्ति धर्मका खूब जोरोंसे प्रचार कर रहे हैं। उनके भाषणों, प्रवचनों तथा मधुर कीर्त्तनों-का जन-साधारणमें बड़ा आदर हो रहा है। वे एक गाँवसे दूसरे गाँवमें घूम-घूम कर बड़े उत्साहसे सना-तन-धर्मकी पताका फहरा रहे हैं।

(ङ) खड़्गपुरमें परमाराध्य श्रीश्रीआचार्यदेव

अनन्तश्री श्रीआचार्यदेव आसाम प्रदेशमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका विराट रूपमें प्रचार कर गत २७ जनवरीको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा (पश्चिम-बङ्ग) पधारे। पुनः वहाँसे श्रीगौर-वाणी-विनोद आश्रम, खड़्गपुरके मठाध्यक्ष त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्ति जीवन जनार्दन महाराजके विशेष निमंत्रणपर बहुतसे संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंके साथ वहाँ पधार कर व्यासाभिन्न जगत्गुरू ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती-गोस्वामी प्रभुपादकी आविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्य-में ७ फरवरीसे ९ फरवरी तीन दिन तक होनेवाली श्रीश्रीव्यासपूजा और उनके अङ्गस्वरूप श्रीपूजा-पंचकका पौरोहित्य किये। इन तीनों दिन विराट-विराट जन-सभाएँ हुईं, जिनका सभापतित्व भी श्रीआचार्यदेवने ही किये। तत्पश्चात् वे चुँचुड़ा, उद्धारण गौड़ीय मठमें पधारे हैं।

(च) श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक पश्चिम बङ्गके गाँवोंमें—

श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजी गत ७ फरवरीसे ९ फरवरी तक खड़्गपुर (पं० बङ्गाल) में होनेवाली श्रीव्यासपूजामें योगदान करनेके पश्चात् आजकल पश्चिम बङ्गालके भिन्न-भिन्न नगरों तथा गाँवोंमें कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ शुद्ध-भक्तिका प्रचार कर वहाँकी जनतामें धार्मिक भावनाओंको जगा रहे हैं। ये कलियुग पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौर हरिकी निखिल भुवन मंगलमयी आविर्भाव-तिथि 'फाल्गुनी पूर्णिमा' के उपलक्ष्यमें श्री-श्रीनवद्वीप धामकी विराट परिक्रमा और महा-महोत्सवमें सम्मिलित होनेके पश्चात् १० मार्च तक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पधारेंगे।

—निजस्व संवाद-दाता

———